RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 55 अंक : 10 कुल पृष्ठ : 36 4 अक्टूबर, 2018

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

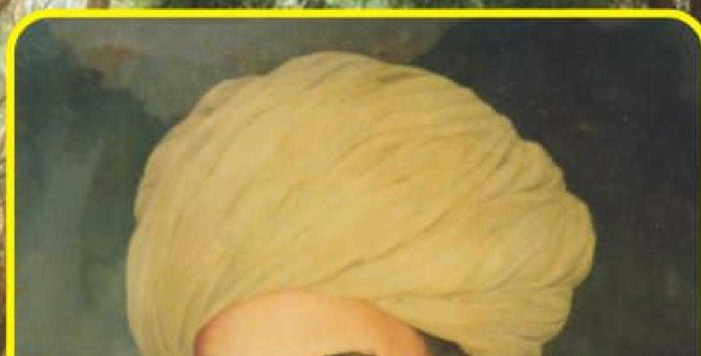

कारज करणो हो घणो, वेगो कर्‌यो विहान।
थोड़ी लेकर आवियो, आयु आयुवान।।

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर–344001 राजस्थान
फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़
आजाद सिंह राठौड़
सिद्धार्थ सिंह राठौड़

–: सम्बंधित फर्म :–

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड
हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 अक्टूबर, 2018

वर्ष : 55 अंक-10

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ समाज संगठक आयुवानसिंह	✍ श्री कल्याणसिंह	08
❍ असतो मा सद्गमय	✍ स्वामी श्री यतीश्वरानन्द	09
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	12
❍ पगड़ी का सम्मान	✍ श्री लोचनसिंह सिरसूं	14
❍ प्रेरक कथानक-3	✍ श्री संकलित	16
❍ क्षत्रिय संस्कृति	✍ श्री श्यामसिंह छापड़ा	17
❍ विचार-सरिता (षट्त्रिंशत लहरी)	✍ श्री विचारक	19
❍ मेरा हाल बेहाल हो गया	✍ श्री भंवरसिंह भरपालसर	20
❍ लोकतंत्र का दिल्ली दरबार	✍ स्व. श्री भंवरसिंहजी बेण्यांकाबास	21
❍ मधुर व स्वस्थ जीवन	✍ सुश्री रश्मि रामदेरिया	22
❍ संयम	✍ श्री युधिष्ठिर	24
❍ भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक.........	✍ आचार्य श्री कनकनन्दी	26
❍ गंगाजी को पी जाने वाला राजा जूहू	✍ श्री हनुवन्तसिंह नंगली	27
❍ मानवीय मूल्य, नैतिक मूल्य, सामाजिक...	✍ श्री भीष्मनारायणसिंह चंवरा	28
❍ मन	✍ श्री युधिष्ठिर	29
❍ अपनी बात	✍	31

समाचार संक्षेप

शिविर सम्पन्न :

सितम्बर, 2018 शिविरों का माह रहा। इस माह में कुल 46 शिविर सम्पन्न हुए। पूर्व सूचित इस माह की शिविर श्रृंखला में से दो शिविर स्थगित किए गए, एक शिविर समय परिवर्तन कर आगे रखा गया और दो शिविरों को स्थान परिवर्तन कर नए स्थान पर आयोजित किया गया। तीन शिविर सूचना प्रकाशित होने के बाद निश्चित कर इसी माह सम्पन्न हुए। ये सभी शिविर प्राथमिक शिविर थे जिनमें नए स्वयंसेवकों को जुड़ने का अवसर मिलता है। इनमें तीन शिविर बालिकाओं के लिये थे, जिनमें से एक गुजरात, एक उत्तरप्रदेश तथा एक राजस्थान में सम्पन्न हुए। शेष बालकों के 43 प्राथमिक शिविर सम्पन्न हुए जिनमें से चार शिविर गुजरात, एक शिविर उत्तरप्रदेश तथा एक शिविर हरियाणा में हुए। शेष 37 शिविर राजस्थान के विभिन्न प्रान्तों में सम्पन्न हुए। सभी जगह अपेक्षित से अधिक संख्या में शिविरार्थी पहुँचे। सभी जगह स्थानीय बन्धुओं का पूरा सहयोग रहा,जो हमारे सामाजिक भाव को दर्शाता है।

भूचर मोरी :

भूचर मोरी शहीद स्मारक ट्रस्ट एवं अखिल गुजरात राजपूत युवा संघ द्वारा 2 सितम्बर को 27वाँ भूचर मोरी शहीद श्रद्धांजलि समारोह आयोजित किया गया। भूचर मोरी एक युद्ध स्थल है। राजस्थान में जो हल्दीघाटी का महत्त्व और मान-सम्मान है, सौराष्ट्र में वही मान-सम्मान और महत्त्व भूचर मोरी को मिला है। उसे सौराष्ट्र का पानीपत या गुजरात के हल्दीघाटी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। जैसे रणथम्भौर में हम्मीर ने शरणागत की रक्षा हेतु युद्ध किया था, वैसे ही शरणागत की रक्षा के लिये ही भूचर मोरी में घमासन युद्ध हुआ था। जाम छत्रसाल (जाम सताजी) नवानगर के शासक थे। अहमदाबाद के सुबेदार ने अकबर और उसके मित्र कोकाह की सेना से बचने के लिये जाम छत्रसाल जी की शरण ली। नवानगर के शासक ने अपने शरणागत की रक्षा के लिये यह युद्ध लड़ा। कुछ सहयोगियों के निर्णायक क्षण में दुश्मन के साथ मिलने से शत्रु का पलड़ा भारी हुआ। इस स्थल पर हजारों क्षत्रियों ने बलिदान दिया। जाम सताजी का पुत्र अजा भी पास में ही विवाह करने गया हुआ था। युद्ध का समाचार पाकर वैवाहिक-क्रियाओं को बीच में छोड़ युद्ध मैदान में आ भिड़ा। पाबू जी राठौड़ और सुजानसिंह छापोली की तरह ***'गठजोड़ों को काट चले थे, बजती रही शहनाई, सतियाँ स्वर्ग सिधाई।'*** की परम्परा यहाँ भी दोहराई गई।

इसी युद्ध में अद्‌भुत वीरता से लड़ते हुए शहीद हुए वीर मेरामणजी जाड़ेजा की मूर्ति का अनावरण भी इस श्रद्धांजलि समारोह में हुआ। पुरस्कार वितरण भी समारोह में आयोजित हुआ। संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी के अलावा अ.भा. राजपूत युवा संघ के अध्यक्ष श्री जयेन्द्रसिंह जाड़ेजा, जामनगर विधायक श्री धर्मेन्द्रसिंह, गोधारा विधायक श्री सी.के. राउल व उत्तरप्रदेश के बलिया से विधायक श्री सुरेन्द्रसिंह ने भी समारोह को सम्बोधित किया।

शेखाला में :

श्री जलंधरनाथ गोगादेव मंदिर, शेखाला का शताब्दी समारोह गोगादेव धाम शेखाला में 11 सितम्बर को आयोजित हुआ। खेड़ के अधिपति राव श्री वीरमदेवजी की रानी रत्नादे के गर्भ से राव गोगादेव राठौड़ का जन्म हुआ। अपने पिता वीरमदेव जी के साथ अपनी किशोरावस्था से ही गोगादेव जी युद्धों में सम्मिलित होते रहे, जिससे उनका शौर्य और रणकौशल निखरता रहा। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने का संकल्प दृढ था। युद्ध क्षेत्र में ही योगेश्वर जलंधरनाथ जी की अनुकम्पा से अभिभूत होकर आपने नाथजी से स्वयं को शिष्यत्व प्रदान करने की विनय की। उन्हें नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित कर तल्लीनाथ नाम दिया गया और चिरंजीव दसवां नाथ बनाया गया। श्री जलंधरनाथ गोगादेव के प्राचीन मंदिर के सौ वर्ष पूर्ण होने पर शताब्दी समारोह मनाया गया।

इस समारोह में संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी ने अंतर की निर्मलता के लिये स्वधर्म पालन को उत्कृष्ट सद्‌कर्म बताते हुए कहा कि गोगादेव जी स्वधर्म का पालन करते हुए परमेश्वर पथ पर अग्रसर हुए। गीता में भगवान ने इसी का समर्थन किया है। समाज को मातृ स्वरूपा मानकर सेवा में जुटने का आह्वान किया। श्री नारायणसिंह जी माणकलाव ने राजपूत शिक्षा कोष की जानकारी दी।

चलता रहे मेरा संघ

(11 मई, 2018 को भारतीय ग्राम्य आलोकायन आश्रम (जिला बाड़मेर) में उच्च प्रशिक्षण शिविर में सम्मिलित शिविरार्थियों के लिये संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी द्वारा उद्‌बोधित संदेश)

कुल देवी के रूप में क्षत्रिय कुल का कल्याण करने वाली माँ भगवती तुझे प्रणाम है। क्षात्र धर्म परम्परा और संस्कृति के प्रतीक परम पूज्य केशरिया ध्वज को भी प्रणाम है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के संस्थापक एवं मेरे जीवन के सम्बल एवं प्रेरक पूज्य तनसिंहजी को प्रणाम। आप सभी के हृदय में विराजमान परमेश्वर और रजपूती को प्रणाम। मनुष्य जीवन दुर्लभ है। ऐसा हमारे मनीषियों ने कहा है जिन्होंने इसे अनुभव किया है। उस दुर्लभता को हम जानते नहीं हैं इसलिए गफलत में जीवन बीत जाता है।

हमें क्षत्रिय कुल में जन्म मिला है। यह विशेषता है, पर वह आपको अनायास ही मिल गया है और इसके बाद क्षत्रिय युवक संघ के शिविर में आना, यह भाग्य की बात है। यह सद्‌अवसर भी आपको मिला है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए, अपनी विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए जागृत रहें तो जीवन गफलत में नहीं बीतेगा। हम यहाँ दिन बिताने नहीं आए हैं। हम दिनों का उपयोग करने आए हैं। इस संसार में खा-पीकर के किसी तरह से गुजर बसर कर लेना, यह मनुष्य के जीवन का बड़े घाटे का सौदा है। इस मनुष्य जीवन को हमको उपयोग में लेना है, इसका सदपुयोग करना है, इस अवसर व इस क्षत्रिय परम्परा को नमन करते हुए, जिसमें हमको जन्म मिला है। इसका सदैव चिंतन रहे तो जीवन गफलत में नहीं जाएगा। क्षत्रिय युवक संघ में प्रवेश दुर्लभ बात है और उसके शिविर में आप लोग आए हैं। आप इस बात का चिंतन, मनन और सतत् स्मरण रखेंगे तो ये शिविर के दिन भी व्यर्थ नहीं जाएंगे। इन सबका हमें सदुपयोग करना है।

अपना शिविर स्थल भारतीय ग्राम्य आलोकायन परिसर में है और चारों तरफ आप देखिये शुष्क पहाड़ हैं, शुष्क वृक्ष हैं। वनस्पति कहीं-कहीं दिखाई देती है। और यहाँ हमको बगीचा लगाना है। लहलहाती हुई खेती करनी है। वह अपने जीवन का सदुपयोग करके, अपने दिनों का सदुपयोग करके कर सकते हैं। यह सब करके हम दुनिया को एक अनुपम भेंट दें, यह हमारे जीवन की सार्थकता है। इस शिविर में आने की सार्थकता है। यह सूखे-सूखे पहाड़, यह सूखे-सूखे वृक्ष, यह थोड़ी बहुत दिखाई देने वाली वनस्पति, इन सबको मित्र बनाना है, इनके साथ रहना है। इनके संदेश को सुनना है। हम कुछ बोल रहे हैं। यह भी कुछ बोल रहे हैं। क्षत्रिय युवक संघ के साथ-साथ यह सब आपका स्वागत कर रहे हैं। तो इनकी भाषा भी हमको सीखनी पड़ेगी।

सबसे पहले एक बात का ध्यान हम जब रखेंगे, तब थोड़ा चिंतन होगा। जड़ और चेतन को जड़-चेतन बोलते हैं। यह सामान्य भाषा है कि कुछ जड़ है, कुछ चेतन है। लेकिन अनुभवी और आप्तपुरुषों ने यह बताया है कि कुछ भी जड़ नहीं है, सब चेतन है। इन सब में परमेश्वर झिलमिला रहा है। अपनी कलाएँ दिखा रहा है, नृत्य कर रहा है, यह विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है। अणु-परमाणु की खोज के बाद यह स्पष्ट हो गया है, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन सदैव गतिशील हैं और गति किसी जड़, वस्तु में नहीं हो सकती। तो यह सब कुछ परमेश्वर है ऐसा हमने शास्त्रों में भी पढ़ा है। सन्तों से ऐसी बातें सुनी हैं तो इसको अनुभव भी करें। कण-कण में भगवान है, जर्रे-जर्रे में खुदा है। यह अनुभवी लोगों ने बताया है। तो हम इतने इतराएँ नहीं कि हम चेतन हैं। लेकिन सोच की बात यह भी हो सकती है कि जड़-चेतन तो कहते हैं, लेकिन हमने भी अपने आप को इनके साथ जड़ बना दिया है। इस शिविर की उपयोगिता तब होगी, जब हम अपनी इस जड़ता को दूर करेंगे। तब

हम इनको मित्र बना सकेंगे। तब आपको इनमें ईश्वर झिलमिलाता दिखाई पड़ेगा। आपको निमंत्रण देता दिखाई देगा। आपका स्वागत करते हुए दिखाई देगा। कुछ पाकर के, चाहे मनुष्य जीवन पाकर के, चाहे क्षत्रिय के घर में जन्म लेकर के इतराने की आवश्यकता नहीं है। इसमें आपका कोई सहयोग नहीं है। भगवान की अनुकम्पा और अनुग्रह से हमको यह प्राप्त हुआ है। हमारी कोई (ख्वाईश) पसन्द नहीं थी। हमारा कोई चयन नहीं है कि हम कहाँ जन्म लें। उस कृपा को अनुभव करें। यह दस दिन, ग्यारह दिन यह अनुभव करने के दिन हैं। गीत भी गायेंगे तो इस बात का अनुभव करें कि हम नहीं सारा संसार हमारा मित्र है, दुश्मन नहीं है। हम जागरूक रहेंगे तो आपको इस बात का भी अनुभव हो जायेगा।

गीता के अनुसार दो तरह के प्राणी, दो तरह के लोग संसार में हैं। देवताओं जैसे और असुरों जैसे। तो यहाँ देवता भी हैं और असुर भी हैं। तब आप सोचेंगे कि इस घट में तो नहीं, उस घट में होंगे। मैं तो नहीं हूँ लेकिन कोई और होगा। ऐसा भी नहीं है। वो देवता और वो राक्षस हमारे अन्दर बसते हैं और इनका सदैव संघर्ष रहेगा। उसको अनुभव करना है। श्रेष्ठ लोगों ने तो यह बात भी कही है, कि इस संसार में सुख अधिक है, दुख बहुत कम है। हम उल्टा अनुभव करते हैं। उन लोगों ने बता दिया। ***दुखालयम् अशाश्वतम्।*** यह दु:ख का घर है संसार और आशश्वत है। एक दूसरा दृष्टिकोण है कि सुख इस संसार में है और सब-कुछ शाश्वत है। जहाँ चैतन्य है वहाँ दुख कैसे हो सकता है? जड़ता में दुख है। तो आप अपनी जड़ता को दूर करें तो दुख दूर हो जाएगा। हम जड़ रहकर के सुखी रहना चाहते हैं। कर्मशील हो जायेंगे तो दुख हमारे पास नहीं भटकेगा। लेकिन कर्मशीलता किस प्रकार की? वैसी जैसा हमको जन्म मिला है। जन्म तो इन्हें बबूल के पेड़ को भी मिला है, पीपल के पेड़ को भी मिला है। ये सब प्राणवान हैं श्वास लेते हैं। जो श्वास और प्रश्वास दोनों लेता है, उसमें भी जीवन्तता है। इनको कोई प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है कि यह श्वास ले रहे हैं, श्वास को छोड़ रहे हैं। तो यह हमारी कोई बहुत बड़ी विशेषता नहीं है कि हम श्वास ले रहे हैं। हम कुछ कपड़े पहने हुए हैं, आपके लिये ये नंगे हैं। ये नंगे होकर भी इनके लिये कोई लज्जा नहीं है, और कपड़े पहन करके भी हम लज्जा से भरे पड़े हैं। शर्म से डूब रहे हैं। यह सब हमारी अन्दर पड़ी जड़ता और असुरता के कारण है।

इन ग्यारह दिनों में जो जड़ता है उसको बाहर निकाल कर फेंकना है। असुरता है इसको बाहर निकाल कर फेंकना है। बुराई संसार में नहीं देखें। संसार बहुत अच्छा है। संसार बहुत उपयोग में आ रहा है हमारे। कहीं ऐसा नहीं हो कि मैं किसी को कोई तकलीफ दे रहा हूँ, इस पर विचार करना है। जिस घट में आप रहेंगे, जिस निवास स्थान पर आप रहेंगे, वहाँ सुख का भण्डार है। लेकिन आपको केवल थोड़ी सी असुविधा है उससे दुख होगा। बस थोड़ी सी के लिये आपको तकलीफ होगी। प्रात:काल जब हम उठकर के यहाँ प्रार्थना में आएँ, तो फूल की तरह से खिला हुआ चेहरा होना चाहिए। माथे में सलवट नहीं होनी चाहिए। किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए। यहाँ आकर भी तनाव रह गया, तो दुनिया में तो कभी दूर होगा नहीं। यह एक ऐसा पवित्र स्थान है जहाँ सुख ही सुख का इंतजाम है, शान्ति ही शान्ति है। सुख और शान्ति इस प्रकार की है जो आने के बाद कभी जाये नहीं। ऐसा नहीं हो कि आप बुराइयाँ बाहर छोड़ के आ गये और वे बाहर जाते रास्ते में पकड़ लें आपको, आपकी बुराइयाँ बाहर जाकर के आपकी मित्र बन जायें। कठिनाई के बाद भी आप यहाँ रहते-रहते ठीक रहते हैं। बाहर का वातावरण, पर्यावरण दूषित हो रहा है। इतना कुछ लेके जाईये आप कि वह बाहर का सब आपको प्रभावित न कर सके और संसार को आप प्रभावित कर दें। अपने आपको इतना बदल कर के जाइये कि संसार आपके सान्निध्य में रहकर के बदलना शुरू हो जाये, आपको बदलना नहीं है। न यहाँ बदलना है संसार को, न आपके

घट को, बदलना है केवल अपने आपको। तो आप पाएंगे कि संसार में कितना सुख और शान्ति है। और उसी सुख और शान्ति के लिये दुनिया कितनी तड़फ रही है। आप खेल ही खेल में, गीत ही गीत में, हरेक कार्यक्रम में इस सबको अनुभव कर सकते हैं।

क्षत्रिय युवक संघ आपको विशाल रूप में यह सुख और शान्ति की अनुपम भेंट देगा। लेकिन कहाँ, तनसिंहजी ने कहा परमेश्वर को पाना चाहते हैं तो अन्तःकरण की शुद्धि परम् आवश्यक है। अन्तःकरण में कुछ अशुद्धता है। बहुत ज्यादा नहीं है आप डरना मत कि आप बहुत गन्दे हैं। थोड़ी सी अशुद्धता है, थोड़ा सा पर्दा है उस पर्दे को हटा देना है। तो अन्दर आप पाएंगे कि कितने श्रेष्ठ हैं। आप भी और सारा संसार भी। किसी में दोष देखने की जो सोच है, दृष्टि है, यह बताती है कि हम कितने दुखी हैं। हम अपने आप को भी दोषी न माने और दुनिया को भी दोषी न माने। क्योंकि आपने न तो दोष को बुलाए हैं और न आपने गुण को भुलाया है। यह सब भगवान की देन है। जो तीन गुण हैं-***सत, रज और तम*** यह परमेश्वर के दिये हुए हैं। आपका स्वभाव, यह परमेश्वर का दिया हुआ है। तो खिन्न नहीं हों, क्रोध आता है तो खिन्न नहीं हों। यह क्रोध आपको नहीं आ रहा है, आपके स्वभाव के कारण आप प्रभावित हो रहे हैं। आपके मुँह से गाली-गलौच निकलता है, अशुद्ध भाषा निकलती है तो तुरन्त विचार कर लें कि यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, यह स्वभाव बोल रहा है। इसी तरह से दूसरे लोगों के बारे में सोचें। यहाँ कोई दोषी नहीं है। और जो मेरे सामने विराजमान है, वो सभी देवता हैं। दिव्य गुणों वाले हैं। आपके साथ-साथ जैसे चित्त और जड़ यह साथ रहते हैं, इसी तरह से असुर और देवता भी साथ-साथ रह रहे हैं। उन सबका युद्ध चल रहा है। जीत किसकी होती है, जिसके साथ भगवान होते हैं। ऐसा कौन है जिसके पास भगवान नहीं है? यह सोचने की बात है। इसे अनुभव करने की बात है कि मेरे साथ मेरा भगवान है। जीत मेरी ही होगी। मैं इस आलस्य को छोड़ दूँगा, मैं स्वार्थ को छोड़ दूँगा। यह चुनौती स्वीकार करें, वो चुनौती देंगे आपको। मैं आ रहा हूँ, तू क्या कर लेगा? संघ क्या कर लेगा? यह संसार क्या कर लेगा? माँ-बाप क्या कर लेंगे? यह विद्यालय क्या कर लेगा? यह चुनौती है उस असुरत्व की आपके लिये, इस चुनौती को जीवन में स्वीकार करें, तब आप क्षत्रिय बन सकेंगे। जो चुनौती को स्वीकार नहीं करता, वो क्षत्रिय कैसे बनेगा?

क्षत्रिय युवक संघ का यह संदेश कि आप सच्चे क्षत्रिय बनें, संसार के लिये उपयोगी बनें। श्रेष्ठ मनुष्य बनें और श्रेष्ठ राष्ट्रीय भावना को रखते हुए, श्रेष्ठ मानवीय भावनाओं को रखते हुए, अपने आपको पवित्र बनाएँ। तो श्रेष्ठ अन्तःकरण की शुद्धि किस प्रकार से होती है, जिसके कारण भगवान का हमको दर्शन हो जाये। इसी सद्कर्म से, पुण्य कर्मों से, अच्छे कर्म करेंगे, बुरे को फटकने न देंगे तो अन्दर निर्मलता आएगी। जहाँ निर्मलता है वहाँ परमेश्वर है। अच्छे कर्म कौनसे होते हैं? जिसके लिये भगवान ने हमको बनाया है वह स्वधर्म है, वह स्वकर्म है, उस स्वधर्म और स्वकर्म को करेंगे तो निर्मलता आएगी। निर्मलता आएगी तो निश्चित रूप से हम परमेश्वर को पास ही पाएंगे। इसकी अनुभूति हमें इन ग्यारह दिनों में करनी है। क्षत्रिय युवक संघ ने, न आपको बुलाया,आप स्वेच्छा से आए। क्षत्रिय युवक संघ इन सब भावनाओं के साथ आप सबका स्वागत करता है, आपका अभिनन्दन करता है। आपके भाल पर तिलक लगाकर स्वागत किया है। वह कौन है जो स्वागत कर रहा है? परमेश्वर के सिवाय कोई स्वागत नहीं। लाने वाला परमेश्वर, पहरा देने वाला परमेश्वर, तिलक लगाने वाला परमेश्वर और आप सब भी परमेश्वर इस बात की अनुभूति घट-घट में हो जाए तो घट-घट शान्ति हो जाए। यही आपका स्वागत है।

✻

समाज संगठक आयुवानसिंह

– कल्याणसिंह

समाज को संगठित करना, संगठित को प्रकटित करना और प्रकटित को संचित शक्ति बनाना साधारण व्यक्ति का काम नहीं। यह कार्य तब और भी मुश्किल है जबकि लोग आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक भिन्न स्थितियों में हों। राज प्रासाद और झौंपड़ी का समन्वय करने वाले को अपनी मानसिक स्थिति को कितना संतुलित रखना होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है। ऐसे व्यक्तितत्व को महान संगठक की संज्ञा ही दी जायेगी।

एक प्राचीन समाज अपनी अच्छी परम्पराओं को भी विकृत कर बैठता है-समय को नहीं समझने पर। एक वीर जाति भय त्रस्त हो जाती है-सिर्फ इतिहास के जिल्द चढ़ाने पर और अवतारी वर्ण भी हेय हो जाता है-सिर्फ बुढ़ापे पर ही निर्वाह करने पर। पर एक व्यक्ति ने कहा, तुम प्राचीन हो, वीर हो और अवतारी हो-इन गुणों को साथ रख कर आधुनिक हो जावो, तो युग प्रवाह को भी अपनी तरफ मोड़ सकोगे। ऐसा कहने वाला युग द्रष्टा ही हो सकता है।

सारे शास्त्रों की शक्ति राजनीति उन्मुख होती है। जिसका राज और ताज होता है, धर्म और अर्थ उसका अनुयायी होता है। राज को संभालने वाला समाज अर्थ से पीड़ित नहीं होता, धन धान्य सम्पन्न होता है-उसके कार्य चरित्र के उदाहरण माने जाते हैं। राज है उसका आज है, और जिसका आज है उसके भूत और भविष्य कीर्तिमान ही कहे जाते हैं। इस उद्देश्य को इंगित करने वाला निश्चित ही महान समाज स्रष्टा कहा जायेगा।

संस्कार समाज की थाती है, इनको संजोकर रखना, इन पर गर्व करना, अपने समाज की पहचान बनाना है। पहचान जो दूसरों से अलग और अपनों से निकट करती है, पहचान जो एक जीवन धारा को लक्षित करती है, वर्ग भेद मिटाती है अत: स्वयं में शक्ति पुंज बन जाती है। भाषा, पहिनावा और रीति-रिवाज की एकरूपता प्रत्यक्ष शक्ति की द्योतक है। इन शब्दों को संस्कार देने वाला इतिहास पुरुष ही हो सकता है।

जीवन की सार्थकता संघर्ष में निहित है। जो जाति संघर्ष की निरंतर प्रक्रिया से गुजरती रहती है वह शक्ति का स्रोत भी होती है। नदी का निरंतर प्रवाह चट्टानों को बालू कण बना डालता है, वही अपने को स्वच्छ भी रख पाता है। उठो संघर्ष रत रहो, संघर्ष से घबराओ मत। सफलता का सुफल संघर्ष के रक्त से सींचित होता है- और उसे प्राप्त करना ही है। यह ओजस्वी वाणी संघर्ष की प्रति मूर्ति की ही हो सकती है।

गम्भीरता के सागर, ओज के हिमालय और संस्कारों के सपूत को सत बार नमन है। राजनीति के चाणक्य, साहित्य के सूर और शौर्य के हरावल को शत शत प्रणाम। भौतिक शरीर भले ही न रहे पर वे आयुवान थे आयुवान हैं और आयुवान रहेंगे। कितना सार्थक नाम है आयुवान, उम्रधारी सच उम्र कितनी लम्बी है उनकी, आज भी हमारे बीच हैं और कल की पीढ़ी भी अपने बीच रखेगी उन्हें, क्योंकि वे चिरंजीवी हैं, आयुवान हैं। हे आयुवान! आपको शत् शत् प्रणाम शत् शत् नमन।

काया कष्ट और माया मोह से, मुक्त हुए जीवन जोगी
याद तुम्हारी शेष रह गई, जीवट के जीवनभोगी
रजवट के रखवाले तेरा, रजपूती-वट याद हमें
भूल न जाना जहाँ कहीं हो, जात रात के संयोगी

असतो मा सद्गमय

– स्वामी यतीश्वरानन्द

द्रष्टा का स्वरूप :

अहंकार का सारतत्त्व जीव कहलाता है। जीव के लिए तीन बातें आवश्यकता है– अन्त:करण, अहं बोध तथा मन में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब, जो चिदाभास कहलाता है। ये तीन मिलकर जीव कहलाते हैं। इनमें से अन्त:करण सबसे महत्त्वपूर्ण है। यह अन्त:करण माया के तीन गुणों–सत्त्व, रज और तम का विशेष परिणाम है। यही अन्त:करण उन्हें बोध पैदा करता है, तथा ब्रह्म के प्रकाश को प्रतिबिम्बित करता है। अहं बोध के साथ प्रतिबिम्बित–चैतन्य ही जीव है। उच्च ज्ञान के द्वारा जब प्रतिबिम्बिक या अन्त:करण विलीन हो जाता है, तब प्रतिबिम्ब का क्या होगा? प्रथमत: ब्रह्म का प्रतिबिम्ब हुआ था, और प्रतिबिम्बक या अन्त:करण विलीन हो जाता है, तब प्रतिबिम्ब का क्या होगा? प्रथमत: ब्रह्म का प्रतिबिम्ब हुआ था, और प्रतिबिम्बक के अभाव में प्रतिबिम्ब ब्रह्म से अभिन्न बना रहता है। दूसरे शब्दों में गुणों के पार जाने पर जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं। जब तक प्रतिबिम्बक है, तब तक जीव है, तथा वह सीमित और बद्ध है। लेकिन प्रतिबिम्बक के विलीन हो जाने पर एकमात्र ब्रह्म बचा रहता है, जिसके लिये कोई सीमा या बन्धन नहीं हो सकते। वह अनन्त, पूर्ण और एकमेवाद्वितीय है।

अवश्य, यह एक बहुत ऊँचा – मानव जाति द्वारा विश्व में कभी भी, कहीं भी उपलब्ध, उच्चतम दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण हममें से अधिकांश की वर्तमान अवस्था में, उनकी पहुँच से बहुत दूर है, और इसे प्राप्त करने में अनेक वर्ष या जन्म लग सकते हैं। अतएव हमारा तात्कालिक कार्य क्या होना चाहिए? हमारा तात्कालिक कार्य प्रतिबिम्ब को प्रतिबिम्बक से अलग करना होना चाहिए। ब्रह्म मन के माध्यम से प्रतिबिम्बित होता है, लेकिन हम मन की विभिन्न वृत्तियों (विचारों) में ही इतने डूबे रहते हैं कि हम उस प्रकाश को पहचान नहीं पाते, जो उसके माध्यम से प्रकट होता है। मन के शुद्ध तथा वृत्तिरहित होने पर ही हम इस प्रतिबिम्बित प्रकाश को देख सकते हैं। तब प्रकाश विचारों से पृथक् दिखाई देता है। केवल इतना ही नहीं हमें यह अनुभूति भी होती है कि यह प्रतिबिम्बित प्रकाश वस्तुत: अनन्त परमात्म–ज्योति का ही अंश है। लेकिन सर्वप्रथम तो हमें अपने उच्च आत्मस्वरूप की एक झलक प्राप्त करनी चाहिए। अनन्त का प्रश्न तो बाद में उठेगा।

अन्तर्ज्योति :

प्रज्ञा या अपरोक्ष अनुभूति की क्षमता हममें प्रसुप्त है। इसकी पुन: प्राप्ति करनी है। उसके द्वारा ही उच्चतर सत्यों की झलक प्राप्त की जा सकती है। प्रज्ञा की इस उच्चतर क्षमता का विकास कैसे करें? तुम कैसे सोते हो, तथा कैसे नींद से जागते हो, इसका थोड़ा निरीक्षण करो। तुम पाओगे कि पहले इन्द्रियाँ मन में विलीन होती है। इसके बाद विचार समाप्त हो जाते हैं, और केवल अस्फुट अहं बोध बचा रहता है। अन्त में यह ''अहं'' गहरी निद्रा में लीन हो जाता है। जागते समय विपरीत प्रक्रिया होती है। सर्वप्रथम अहं–बोध उदित होता है। उसके बाद वह मन में उदित हो रहे विचारों तथा आसपास की वस्तुओं के साथ संयुक्त होता है। जाग्रत होने के ठीक बाद एक धूमिल अन्तरिम काल रहता है, जब तुम विशुद्ध अहं–बोध को क्षण भर के लिये बनाये रखते हो। इस क्षण जगत् छाया के समान प्रतीत होता है; वह हमारे लिये तब तक स्थूल अस्तित्व धारण नहीं किये होता है। हमारे जाग्रतकाल में भी इसी विशुद्ध चेतना के कुछ अंश की प्राप्ति प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए। साधक के समक्ष यही महत्त्वपूर्ण कार्य है। हमें उस स्तर की प्राप्ति करनी चाहिए, जहाँ प्रकाश और अन्धकार को पृथक् करने वाली रेखा बहुत बारीक है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में राजा जनक आदरणीय ऋषि याज्ञवल्क्य से प्रश्न करते हैं : ''मानव की ज्योति क्या है?'' ऋषि ने उत्तर दिया कि सूर्य का प्रकाश वह

ज्योति है। सूर्य के प्रकाश में मानव बैठता, बाहर जाता, कार्य करता, लौटता है। सूर्यास्त होनेपर ज्योति क्या होती है? चन्द्रमा। जब चन्द्रमा नहीं होता? अग्नि। जब अग्नि नहीं होती? ध्वनि। जब ध्वनि भी प्रशमित हो जाती है? इस तरह प्रश्न करते हुए वे अपनी आत्मा तक पहुँचते हैं। मन बाह्य विषयों को पहचानता है। लेकिन मन के पीछे ज्योतिर्मय आत्मा विद्यमान है, जिसके प्रकाश से हम अपने भीतर स्वप्न देखते हैं। स्वप्न की वस्तुओं को प्रकाशित करने वाली ज्योति के बारे में सोचो। वह ज्योति क्या है? वह आत्मा ही है। आत्मा स्वप्रकाश है। वह स्वयं अपने को प्रकाशित करती है। अन्य कोई उसे प्रकाशित नहीं कर सकता। वह अन्य विषयों को-बाह्य विषयों तथा आन्तरिक मानसिक चित्रों को प्रकाशित करती है। जब वस्तुएँ नहीं रहतीं, तब केवल स्वप्रकाश आत्मा प्रकाशित होती है। जाग्रत और सुषुप्ति की दो अवस्थाओं के बीच हम लगभग एक क्षण के लिये इस विशुद्ध आत्मा के रूप में रहते हैं। इसकी जाग्रतावस्था में स्थाई उपलब्धि करना हमारा उद्देश्य है। तब वह कभी दूर नहीं होगी।

प्रज्ञा को कैसे जगायें :

हमारी बौद्धिक, भावनात्मक और क्रियात्मक, इन त्रिविध क्षमताओं का सर्वोत्कृष्ट उपयोग करने पर हमारे भीतर विस्मृत पड़ी प्रज्ञा की क्षमता का विकास होता है। सर्वप्रथम इन क्षमताओं को शुद्ध करना पड़ता है। यह शुद्धिकरण एक कठिन कार्य है। इसमें बहुत समय लगता है। पूर्व अनुभवों के संस्कार हममें छुपे पड़े हुए हैं। उन्हें दूर करने में समय लगता है। इनमें से कुछ को इच्छाशक्ति की सहायता से साफ कर देना पड़ता है। कुछ अन्य संस्कारों को अन्य संस्कारों की सहायता से नियन्त्रित करना पड़ता है। कुछ दूसरों को अन्य रूपों में परिवर्तित करना होता है। संस्कारों के रूप में मन में संचित शक्ति को उच्चतर दिशा में प्रवाहित करना पड़ता है। इसे उदात्तीकरण कहते हैं। इसमें कर्मयोग उपयोगी सिद्ध होता है। तुमने घृणा को जीत लिया है, ऐसा सोचने मात्र से उस पर विजय नहीं पाई जा सकती। तुम्हें आदर्श को कार्य में प्रतिफलित करना चाहिए, अपने जीवन में व्यक्त करना चाहिए। आदर्शों को कार्य रूप में परिणत करना चाहिए। शुभ कार्यों के परिणाम पुन: शुभ संस्कारों के रूप में संचित रहते हैं। ये मन को पवित्र तथा बलवान बनाते हैं। कुछ संस्कार नियमित जप और ध्यान द्वारा परिवर्तित अथवा पराभूत किये जा सकते हैं। ध्यान विभिन्न क्षमताओं को समन्वित करने तथा उनमें सामंजस्य बिठाने में सहायक होता है। चिन्तनात्मक, भावनात्मक और क्रियात्मक-इन तीन क्षमताओं के शुद्ध, समन्वित और एकाग्र होने पर प्रज्ञा की क्षमता का आविष्कार होता है। आत्मा की ज्योति सर्वप्रथम झलकों के रूप में, लेकिन बाद में नित्य विद्यमान प्रकाश की किरण के रूप में प्रकाशित होती है।

तब हम पाते हैं कि आत्मा जीव के रूप में मन, इन्द्रियों और स्थूल देह के माध्यम से कार्य करती है। अपने प्रसिद्ध दक्षिणामूर्ति स्तोत्र में श्रीशंकराचार्य इस बात को स्पष्ट करते हैं :

नानाच्छिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत्समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये।।

अर्थात्, ''जिस प्रकार अनेक छिद्रयुक्त घट के भीतर स्थित दीप की प्रभा उन छिद्रों में निकलती है, उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान चक्षु आदि करणों के माध्यम से बाहर प्रकाशित होकर ''मैं जानता हूँ'', इस तरह का भान पैदा करता है। आत्मा के द्वारा प्रकाशित होने के बाद अन्य सभी पदार्थ प्रकाशित होते हैं। मैं उसी दक्षिणामूर्ति गुरु को प्रणाम करता हूँ, जो परम आत्मा ही है।''

इसकी अनुभूति होने पर हम यंत्रों या करणों को वास्तविक आत्मा से पृथक् कर सकेंगे। तब जिसे हम पहले आत्मा कहा करते थे वह मिथ्या आत्मा प्रतीत होगी। देह, मन और इन्द्रियों का संघात मिथ्या आत्मा है। वास्तविक आत्मा इन सब के पीछे इन्हें प्रकाशित और प्राणवन्त करती हुई विद्यमान है। हमारा वर्तमान कार्य हमारे माध्यम से प्रकाशित हो रही, इस ज्योतिर्मय आत्मा

को खोज निकालना है। यही हमारा निकटतम लक्ष्य है। अवश्य, अन्तिम लक्ष्य आत्मा को अनन्त परमात्मा अथवा ब्रह्म में विलीन करना है। लेकिन अभी वह प्रश्न नहीं उठता। हम जहाँ हैं, वहीं प्रारम्भ करें, तथा दैनन्दिन, जप, ध्यान, स्वाध्याय और नि:स्वार्थ कर्तव्यपालन द्वारा स्वयं को शुद्ध करते हुए अग्रसर होवें।

तीन प्रकार के शरीर :

स्थूल देह स्थूल पदार्थ से निर्मित है। इसी का जन्म और मृत्यु होती है। इस स्थूल देह से भिन्न हम सभी की एक सूक्ष्म देह है। स्थूल देह के नष्ट होने पर भी अन्य दो शरीर संयुक्त रूप से बचे रहते हैं। इन्द्रियाँ किस शरीर में रहती हैं? यदि इन्द्रियों से हमारा तात्पर्य बाह्य नेत्र, कर्ण इत्यादि ज्ञान के बाह्य स्थूल कारणों से है, तो वे स्थूल शरीर के अंग होंगे। लेकिन यदि इन्द्रियों से हमारा तात्पर्य उस सूक्ष्म शक्ति से है, नेत्रादि बाह्य अंग जिसके यंत्र मात्र हैं, तो वे सूक्ष्म शरीर की अंग कहलायेंगी। कारण शरीर सूक्ष्म शरीर का भी आधार है।

स्थूल देह के नष्ट होने पर किसी का भी अन्त नहीं होता। जीव अपनी समस्त वासनाओं और इच्छाओं के साथ उतना ही बद्ध बना रहता है, जितना वह स्थूल शरीर के विद्यमान रहते समय था। अत: मरने से पूर्व उन सभी वासनादि से छुटकारा पा लेना चाहिए। मृत्यु कोई समाधान नहीं है, क्योंकि जैसा मैंने कहा, मृत्यु के साथ किसी का अन्त नहीं होता। वह न तो हमें श्रेष्ठतर बनाती है और न ही कम अज्ञानी। हमें उस तत्त्व का अवश्य साक्षात्कार कर लेना चाहिए, जो जीवन और मृत्यु से परे है। हममें एक ऐसी शक्ति है, जो नेत्र से भिन्न है, लेकिन जो नेत्र के माध्यम से अभिव्यक्त होती है; जो कर्ण से पृथक् है, लेकिन जो कर्ण के द्वारा प्रकट होती है; जो मन से भिन्न है, लेकिन जो मन के माध्यम से कार्य करती है। और वही शक्ति इसी प्रकार अन्य करणों अथवा इन्द्रियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है।

सुषुप्ति में इन्द्रियाँ और मन कारण शरीर में विलीन हो जाते हैं, लेकिन चेतनावस्था प्राप्त होने पर व्यक्ति अपनी समस्त इच्छाओं, वासनाओं, तृष्णाओं, काम, क्रोध, घृणा को साथ लेकर वापस आ जाता है। उसको कोई लाभ नहीं होता। समाधि और सुषुप्ति, आध्यात्मिक चेतना और गहरी निद्रा में यही महान् अन्तर है। सत्य का साक्षात्कार होने पर हमारी सारी वासनाएँ और इच्छाएँ भस्म हो जाती हैं। यदि कोई मूढ़ व्यक्ति समाधि में जाए, तो वह सिद्ध पुरुष होकर लौटता है, लेकिन सत्य यह है कि मूढ़ व्यक्ति समाधि में जा ही नहीं सकता।

एक वर्गीकरण के अनुसार हमारे तीन शरीर हैं, और दूसरे वर्गीकरण के अनुसार हमारे पाँच कोष हैं। सामान्यत: हम स्थूल देह का इतना अधिक अनुभव करते हैं कि सूक्ष्म तथा कारण शरीर का हमें अनुभव ही नहीं होता। क्या प्रत्येक मानव को प्राप्त विभिन्न शरीरों की धारणा की जा सकती है? हाँ। सचमुच अन्तर्मुखी होने पर तथा मन की बहिर्मुखी वृत्तियों को रोककर उन्हें अन्तर्मुखी करने पर यह सम्भव है। जब तक प्राण-तत्त्व देह के साथ संयुक्त रहता है, तब तक प्रत्येक परमाणु उससे प्राणवन्त रहता है। देह में हम शक्ति के संस्पर्श में आते हैं और शक्ति का अर्थ है ऊर्जा अर्थात् स्पन्दन। और आगे बढ़ने पर हम एक दूसरे प्रकार की शक्ति या ऊर्जा अर्थात् विचार या भावनाओं को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि हमारा व्यक्तित्व मानो स्पन्दनों का एक समूह है। कभी-कभी मन में बहुत विक्षेपकारक विचार उठते हैं और तब हम मानो उबलते हुए स्पन्दनों का समूह बन जाते हैं जिनमें हमारी देह रखी गई हो। और आगे बढ़ने पर यदि हम अपने मन को शान्त करने में समर्थ हों, तो हम अपनी चेतना का अनुभव करते हैं-अवश्य विशुद्ध चैतन्य का नहीं, लेकिन एक मिश्रित चेतना का, जिसमें से अस्पष्ट भावनाएँ और संवेग विलीन होते हैं-तथा जिस निश्चित चेतना में ''अहं'' का प्राधान्य होता है। इसे कारण अर्थात् मन और इन्द्रियों की चेतना से भिन्न कर्ता की चेतना कहा जा सकता है। यह अनुभूत-आत्मा या तेजस् कहलाता है। और इस कर्ता से भिन्न एक विशुद्ध चैतन्य है, एक व्यक्तिगत चैतन्य है, जो सभी प्रकार के ज्ञान और संवेदनाओं के माध्यम से प्रकाशित होता है। माण्डूक्य उपनिषद् में इसे प्रज्ञा कहा गया है। *(क्रमश:)*

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

इन्सानियत है तो वह इन्सान है। इन्सान की पहचान इन्सानियत से ही होती है। यदि इन्सानियत नहीं है तो वह इन्सान के रूप में एक हैवान है, राक्षस है। इन्सानियत की पटरी से उतरे इन्सान को इन्सानियत की शिक्षा मिले तो उनका जीवन सार्थक बन सकता है। इन्सानियत का शिक्षण क्षेत्र जहाँ इन्सानियत की शिक्षा मिला करती है, एक तो पाठशाला है, दूसरा क्षेत्र जेल है जहाँ बिगड़े इन्सानों को रखा जाता है। पाठशाला के अध्यापकों और जेल के जेलरों पर राष्ट्र निर्माण के महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व तो डाल दिये हैं, पर दुर्भाग्य यह है कि सरकार का ध्यान इन दोनों सेवाओं की ओर नहीं जाता। इन्सानियत के लिये बने इन शिक्षण क्षेत्रों की सरकार ने दयनीय और उपेक्षापूर्ण स्थिति बना रखी है। जेल को सुधारगृह का नाम तो दिया है पर जेलों के तो और भी बुरे हाल हैं, जहाँ पाखण्ड के सिवा कुछ नहीं है। जेल में बन्दियों के साथ में दुर्व्यवहार करना तो आम बात हो गई है। जेल में आये इन्सान के साथ पशुता का व्यवहार किया जाता है जिससे उनमें कुछ बची-कुची मानवता भी जेल के दुर्व्यवहार से सिसकने लगती है।

भूस्वामी संघ के दूसरे आंदोलन में पूज्य श्री तनसिंहजी को टोंक जेल में रखा गया। सरकार इस भूस्वामी संघ के आंदोलन को कुचलना चाहती थी इसलिये सरकार ने इस आंदोलन को विफल करने के लिये अपना जाल बिछाया। अब सरकार की सह पर आन्दोलनरत बड़े नेताओं को जेल में तंग करने का सिलसिला जारी हुआ। सरकार ने अपना हर दांव-पेच इन नेताओं के विरुद्ध आजमाया ताकि वो परेशान होकर आंदोलन को वापस ले लें। इसी तर्ज पर जेल में पूज्य श्री तनसिंहजी को तंग करने लगे क्योंकि पूज्य श्री तनसिंहजी इस भूस्वामी आंदोलन के प्रमुख स्तम्भ थे। इस कारण जेल में पूज्य श्री के साथ हर आये दिन अन्याय व द्वेषपूर्ण व्यवहार करना सरकार ने अपनी नीति बना ली। उनके साथ यह ज्यादती कलक्टर व जेलर की मिलीभगत, साजिश का एक हिस्सा थी। सरकारी सह पर जेल में कलक्टर, जेलर व जेल कर्मचारियों द्वारा राजनैतिक कारणों से उनके साथ जो दुर्व्यवहार किया गया, उन्हें मानसिक संताप दिया गया उसे भुलाये भी नहीं भुलाया जा सकता इसलिये पूज्य श्री ने टोंक जेल को राजस्थान का अण्डमान कहा है।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने टोंक जेल को राजस्थान का अण्डमान बताया। अण्डमान ब्रिटिश सरकार के जमाने की जेल थी जिसे काला पानी भी कहा जाता है। ब्रिटिश सरकार से विद्रोह करने वाले (स्वतंत्रता सेनानियों) व खूंखार कैदियों को अण्डमान में स्थित जेल में रखा जाता था। पूज्य श्री ने टोंक जेल को राजस्थान का अण्डमान क्यों बताया? पूज्य श्री के इस कथन की सत्यता जानने के लिये हम आगे बढते हैं और देखते हैं टोंक जेल राजस्थान का अण्डमान कैसे है?

पूज्य श्री तनसिंहजी की यह पहली जेल यात्रा नहीं थी, इससे पहले भी वे दो बार जेल जा चुके थे। सवाईसिंह जी धमोरा पहले से ही इस जेल में थे। पूज्य श्री ने बताया-''अस्पताल की लोहे वाली स्प्रिंग वाली खाट मिली। बिस्तर लगाकर बैठा ही था कि सवाईसिंह जी ने मुझ पर प्रश्नों की बौछार कर दी। गिरफ्तारियों की संख्या क्या हो गई? तलाशियाँ कहाँ कहाँ ली गई? क्या क्या वस्तुएँ तलाशियों में प्राप्त हुई? अखबारों का क्या रुख है? काम करने वालों को क्या क्या कठिनाइयाँ आती हैं। इत्यादि इत्यादि। ऐसा प्रतीत हुआ कि खबरों के लिये सवाईसिंह जी को बहुत बुरी तरह भूख लगी हुई थी। मुझे उसकी गिरफ्तारी से लेकर मेरी गिरफ्तारी तक एक-एक घटना को बताना पड़ा।''

जेल में आकर प्रत्येक व्यक्ति को बाहर क्या हो रहा है यह जानने की स्वाभाविक भूख बनी रहती है। इस भूख को मिटाने का एकमात्र माध्यम अखबार होता है। जेल अधिकारियों तथा सरकार की मंशा रहती है कि बंदियों को इससे वंचित रखा जाये। पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''जब मैंने सवाईसिंह जी की मनोदशा का विश्लेषण करना आरम्भ किया तो आश्चर्य हुआ कि सभा मंच पर चढकर किसी भी बड़े आदमी पर आलोचनात्मक आक्रमण करने में रंच मात्र भी झिझक न रखने वाले सवाईसिंहजी यहाँ आकर केवल संतोष पर कैसे गुजर कर रहे हैं? सावरकर जैसे नेताओं को अण्डमान की जेलों में चक्की क्यों चलानी पड़ी? इसका यही कारण प्रतीत होता है कि उनके पास इनके सिवाय और कोई चारा नहीं था। उसी प्रकार राजस्थान के इस अण्डमान में सवाईसिंह जी को भी संतुष्ट होने के सिवाय और कोई चारा नहीं था। रोटी के लिये सवाईसिंह जी को जेल के दफ्तर में श्रम करना पड़ता था और बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें कुछ भी भान नहीं था। जिज्ञासा होते हुए भी कुछ कर नहीं पा रहे थे।''

टोंक जेल में आकर पूज्य श्री तनसिंहजी को समाचार पत्रों के लिये अधिक संघर्ष करना पड़ा। राजस्थान कण्डीशन्स ऑफ डिटैन्सन आर्डर 1952, के नियम 14 के अन्तर्गत स्वीकृत समाचार पत्रों की एक सूची जेल अधिकारियों को रखनी आवश्यक है। उस सूची में दर्ज किसी भी समाचार पत्र को मंगाया जा सकता है। पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''हमने नियम 14 के अन्तर्गत स्वीकृत पत्रों की सूची देखने की इच्छा जेलर से जताई। जेलर ने हमारी इच्छा पर यह सूची बताई तो हमें उसे पढकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसमें कई तो ऐसे समाचार पत्र हैं जो कभी के बन्द हो गये हैं और कई ऐसे पत्र थे जो बिलकुल निकम्मे पत्र थे। राष्ट्रदूत और लोकवाणी का नाम जरूर दर्ज था किन्तु राष्ट्रदूत के लिये सरकार ने इस प्रकार की आज्ञाएँ प्रचलित कर दी थी कि कोई भी बंदी अपने पैसों से भी राष्ट्रदूत मंगाना चाहे तब भी उसे इसकी अनुमति नहीं दी जावे।''

समाचार पत्र पाने का अब और कोई विकल्प नहीं बचा देख समाचार पत्रों के लिये पुलिस अधीक्षक टोंक को लिखित में अर्जी देने का निश्चय किया। पूज्य श्री ने बताया कि-''तारीख 3.2.56 को ही मैंने पुलिस अधीक्षक टोंक को राष्ट्रदूत, नवयुग और वीर अर्जुन अखबारों के लिये लिखा था। मैंने उसमें यह स्पष्ट लिखा था कि यह अखबार मैं अपने खर्चे से मंगाना चाहता हूँ। इस प्रार्थना पत्र का तारीख 6.2.56 तक कोई उत्तर नहीं आने से हमने तारीख 6.2.56 को अधीक्षक पुलिस को भूख हड़ताल का नोटिस दे दिया कि यदि हमें समाचार-पत्र नहीं मिले तो मैं तारीख 8.2.56 से भूख हड़ताल कर दूंगा। तारीख 7.2.56 को सवाईसिंह जी ने मेरी सहानुभूति में भूख हड़ताल का नोटिस जेलर को दिया तो उसने कहा अब तो हमें मजबूरन आपको अलग करना पड़ेगा। उसी वक्त जेलर के आदेशानुसार सवाईसिंह जी को अस्पताल में रखा गया और मुझे मेरे वार्ड में। हम तारीख 8.2.56 से ही भूख हड़ताल करने वाले थे किन्तु अलग-अलग करने के कारण हमने तारीख 7.2.56 से ही भूख हड़ताल शुरू कर दी। आमतौर पर ऐसा होता है कि भूख हड़ताल करने वाले को उन साथियों से अलग कर दिया जाता है जो भूख हड़ताल पर नहीं हैं किन्तु इस जेलर ने हम दोनों को सिर्फ मानसिक क्लेश देने के कारण अलग-अलग कर दिया जबकि हम दोनों तो भूख हड़ताल पर थे। नियम यह भी है कि नजरबन्द किसी एक ही जेल में अलग-अलग हों तो वे दिन में आपस में स्वतंत्रतापूर्वक मिल सकते हैं किन्तु हमको तारीख 7.2.56 व 8.2.56 को आपस में नहीं मिलने दिया गया, इस प्रकार हम दोनों एक तरह की कालकोठरी में रहे। हमारे पास सिर्फ एक ही कैदी खाना बनाने के लिये रहता था और भूख हड़ताल होने पर वह भी हमसे अलग कर दिया जाता था। जब भी भूख हड़ताल हमने की तब हमेशा अकेले रहना पड़ता था और क्योंकि साधारण कैदी नहीं आ सकते थे इसलिए न तो दातुन ही आते थे और न स्नान के लिये पानी ही भरा जाता था।''

(शेष पृष्ठ 23 पर)

पगड़ी का सम्मान

– लोचनसिंह सिरसूं

महाराणा प्रताप अपने युद्ध सम्बन्धी कार्यक्रम में व्यस्त थे। चित्तौड़ की स्वाधीनता की धुन उन्हें चैन से नहीं बैठने दे रही थी। प्रबल शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये किन उपायों और किन साधनों का उपयोग किया जाय, इस विषय पर वे अपने विश्वसनीय सरदारों से मंत्रणा कर रहे थे। साथ ही दिल्ली से पृथ्वीराज जी द्वारा महाराणा को भेजे गये पत्र का जवाब देना भी चर्चा का विषय था।

इसी समय सीतलराय नामक एक चारण उनकी सेवा में हाजिर हुआ। वह एक प्रतिभाशाली, निडर, स्वामी-भक्त चारण था। उसके हृदय में महाराणा प्रताप की पराक्रमता, शीलता तथा भीषण प्रतिज्ञा के कारण भरपूर श्रद्धा थी। मुगलों को किसी का भी महाराणा से सम्पर्क अच्छा नहीं लग रहा था। वे नहीं चाहते थे कि इस विद्रोही, विप्लवकारी राजपूत का कोई भी नया सम्पर्क बने। इस सम्बन्ध में मुगल पूरा ध्यान रखते थे। सीतल बड़ी हिम्मत करके प्रताप के पास पहुँचा और विनम्रता से कहने लगा-

''हे राजपूत-कुल कमल दिवाकर प्रताप! बस आप ही ऐसे राजपूत नृपति शेष हैं, जिन्होंने न तो मुगलों से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखा और न ही उनकी आधीनता स्वीकार की। हे मेवाड़ के कर्णधार! देश के सारे नरेशों ने कुल-मर्यादा बिसारकर, जातीय गौरव को मिट्टी में मिलाकर मुगलों की दासता स्वीकार कर ली है। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं या उनके कृपा भाजक बन गए हैं। हे नाथ! आर्य जाति और क्षत्रियों के लिये यह कलंक है। हे मेवाड़ केहरी! आपके अलावा ऐसा कोई राजपूत पुंगव दिखाई नहीं देता जिसमें स्वजातीय या स्वदेश का गौरव शेष हो। मेरे हृदय में आपके प्रति अपार श्रद्धा है। आपकी प्रतिष्ठा में मैं अपने हृदयोद्‌गार कविता के रूप में प्रस्तुत करना चाहता हूँ। मुझे स्वीकृति प्रदान कर मेरे परिश्रम को सफल बनावें। इसी उद्देश्य से मैं आपकी सेवा में हाजिर हुआ हूँ।''

महाराणा बोले-''कविराज! यह समय न तो गुणगान सुनने का है, न ही कविता पाठ का। मातृभूमि मेवाड़ पराधीनता के पास में पड़ी हुई है। इसके उद्धार के उपाय सोचने का समय है। फिर भी तुम्हारे उत्साह को भंग करना नहीं चाहता। सुनाओ, जो कविता सुनाना चाहते हो।'' सीतल ने अपनी वीर रस पूर्ण भाव भरी कविता सुनाई। महाराणा ने सीतल को विदाई पर कुछ द्रव्य देने का आदेश दिया। इस पर बड़े विनीत भाव से सीतल बोला,-''हे एकलिंग दिवान! परमात्मा की कृपा से गुजारे लायक मेरे पास जुगाड़ है। मैं इस विचार से आपकी सेवा में हाजिर नहीं हुआ हूँ। लेकिन यदि आप प्रसन्न हैं और कुछ देना चाहते हैं तो कृपा करके मुझे आपकी कोई पगड़ी प्रदान करें, जिसको अपने सिर पर धारण कर मैं अपने आपको धन्य समझूंगा।''

महाराणा ने सीतल को पगड़ी व सिरोपा देने का हुक्म दिया। सीतल ने बड़ी विनम्रता और आदर के साथ स्वीकार किया और विदा होने को था कि महाराणा ने रोका और अपने सरदारों से कहा,-''क्यों न हम पृथ्वीराज जी के पत्र का उत्तर इस कविराज के साथ ही भिजवाएँ?'' सभी सरदारों ने इसे ही उचित समझा और महाराणा ने यह पत्र पृथ्वीराज जी को ही देने का निर्देश देते हुए पत्र सीतल को सौंपा।

सीतलराय के पास जो भी संपत्ति थी उसकी अपेक्षा महाराणा के सिरोपा व पगड़ी को उसने अधिक मूल्यवान माना, क्योंकि इनका सम्बन्ध महाराणा के शरीर से रह चुका है। महाराणा प्रताप की पगड़ी धारण किए हुए ही वह अकबर के दरबार में पहुँचा। जब उसने झुककर बादशाह को सलाम किया तो उसने सिर से पगड़ी उतार ली। यह देखकर सभी दरबारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वयं अकबर ने पूछा,-''क्यों भाट! आदाब बजाते हुए

इस प्रकार पगड़ी उतार लेने का क्या सबब है? दरबार में नंगे सिर आदाब करना कहाँ का रिवाज है?''

''हुजूर! नंगे सिर मुजरा करना हमारे मेवाड़ में तो अपराध गिना जाता है।'' निडर चारण कवि ने उत्तर दिया।

''फिर तुमने यह बदसलूकी करने की हिम्मत कैसे की?'' अकबर ने पूछा।

''इसमें मेरी मजबूरी है जहांपनाह।'' सीतल ने उत्तर दिया।

''कौन सी मजबूरी है?'' अकबर ने चिल्लाकर पूछा।

सीतल ने बड़े विनम्र भाव से कहा, ''जहांपनाह! यह पगड़ी उस मेवाड़ केहरी की है, जिसने अपने इष्ट देव एकलिंग जी के अतिरिक्त आज तक किसी के सम्मुख अपना सिर नहीं झुकाया और न झुकाने का विचार रखते हैं। आपके दरबार में आकर मैंने अपनी गर्दन तो झुकाई मगर महाराणा प्रताप की पगड़ी कैसे झुकाता। यही पगड़ी उतार लेने का कारण है।''

''यदि तुम्हारा सिर काट दिया जाय तो यह पगड़ी ठोकरों में होगी।'' अकबर का क्रोध बढता जा रहा था।

''आप ऐसा नहीं कर सकते हुजूर। यदि ऐसा किया गया तो पगड़ी के साथ मैं भी अमर हो जाऊँगा।'' सीतल का चतुराई भरा उत्तर सुनकर अकबर का क्रोध जाता रहा। और पूछा-''कवि अब बताओ कि मेवाड़ से चलकर आने का क्या कारण है?''

''आपके कृपा पात्र कवि पृथ्वीराजजी ने दो दोहे लिखकर महाराणा को भेजे थे, उन्हीं का जवाब लेकर उपस्थित हुआ हूँ।'' कवि बोला।

अकबर बोला-''तो तुम्हारा महाराणा जंगलों में भटकने से तंग आ गया है क्या?''

''यह अनुमान आपने कैसे लगाया हुजूर?''

''उन्होंने हमें पत्र लिखा था कि हमसे सुलह करना चाहता है।''

''ऐसे पत्र की जानकारी न तो महाराणा को है न हमारे यहाँ मेवाड़ के स्वाभिमानी सरदारों में से किसी को है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि आपकी खुशामद करने वालों में से किसी ने फर्जी पत्र तैयार कर लिया और आपने उसे सच मानलिया हो? मुझे महाराणा ने यह आज्ञा दी थी कि मैं जो पत्र लाया हूँ वह पृथ्वीराज जी को ही देना क्योंकि यह उन्हीं के पत्र का उत्तर है।''

''मैंने बादशाह सलामत की इजाजत से ही पत्र लिखा था।'' इस बार पृथ्वीराज जी बोले। चारण कवि ने अपने दुपट्टे में रखे गये मखमली वस्त्र पर उकेरे गए पत्र को निकाल कर पृथ्वीराज जी को भेंट करना चाहा। अकबर ने आदेश दिया-''तुम स्वयं पढकर सुनाओ कि तुम्हारा राणा क्या चाहता है।'' सीतलराय यही चाहता था। ऊँचे स्वर में उसने उत्तर में भेजे गये दोहों को पढना प्रारम्भ किया-

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूँ इकलिंग।
उगे जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग।।
खुशी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जतो पतो, कलमा सिर केवाण।।
सांग मुड सहसी सको, समजस जहर सवाद।
भड़ पीथल जीतो भला, बैण तुरक सूं वाद।।

भावार्थ- एकलिंग नाथ की कृपा से इस तन से, प्रताप मुख से अकबर तुरक ही कहलाएगा, बादशाह नहीं। सूर्य जहाँ पूर्व दिशा में उगता है, वहीं उगता रहेगा। प्रसन्नतापूर्वक हे राठौड़ पृथ्वीराज! मूंछों की मरोड़ रखो। जब तक प्रताप है, उसकी तलवार यवनों के सिर पर जानो। प्रताप सिर पर भाला सहेगा क्योंकि सामने वाले का यश विष के समान होता है। हे योद्धा पृथ्वीराज! तुरक के साथ वचन रूपी विवाद में आप दृढता से विजयी बनो।

सारी सभा में सन्नाटा छा गया और पृथ्वीराज जी का चेहरा दमक उठा। सीतल के मुख से महाराणा का स्पष्ट गर्वोक्त उत्तर सुनकर अकबर के चेहरे पर क्रोध व उदासीनता के भाव दिखाई दिए। कोई धीरे से फुस फुसाया-'देखते हैं कब तक प्रताप की पगड़ी बादशाह के सामने नहीं झुकती।' पर इस कथन में निराशा ही प्रकट हुई। उधर पृथ्वीराज जी को अपने कथन की सत्यता प्रकट होने से अत्यन्त प्रसन्नता थी। सीतल ने पृथ्वीराज जी से आँखें मिलाई। पगड़ी उतारकर बादशाह को नमन किया और दरबार से विदा हुआ। धन्य है ऐसा कवि।

प्रेरक कथानक-3

- संकलित

दो भाई थे। एक भाई नित्य-एक तत्त्वदर्शी महात्मा के सत्संग में जाता था। लगन से उनकी सेवा किया करता था। दूसरा भाई विख्यात वेश्या के कोठे पर प्रतिदिन जाता, शराब पीता था। पहला भाई रोज समझाता था, ''देखो! हम लोग भले घर के हैं। तुम्हें यह शोभा नहीं देता। सत्संग में चला करो। यही हमारा कर्त्तव्य है। ***'एहि तन कर फल बिषय न भाई।''*** (मानस, 7/43/1) किन्तु दूसरे भाई पर कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता था।

कुछ काल पश्चात् पहला भाई रात में सत्संग से लौट रहा था। रात अँधेरी थी। पाँव में एक खूंटी गड़ गई। इस पार से उस पार हो गई। खून ही खून फैल गया। किसी तरह घर पहुँचा। सवेरा होने से कुछ पहले दूसरा भाई वेश्या के यहाँ से लौटा तो रास्ते में हार पड़ा मिला। लाखों का हार मिला। प्रसन्नता से घर पहुँचा तो भाई कराह रहा था, बोला, ''ले, और कर ले सत्संग! फल मिला। अरे चार दिन की जिन्दगी है! मौज-पानी ले ले। देख, मुझे लाख रुपये का हार मिला और तुम्हें पाँव में खूँटी लग गई। सत्संग से क्या मिला? टिटनेस हो जाएगा तो मर भी जायेगा।'' छोटा भाई बोला-''नहीं! सन्त-दर्शन से कभी अनिष्ट नहीं हो सकता।'' बड़ा बोला, ''सामने दिखाई तो दे रहा है। पाँव चीरे बैठा है, कहता है अनिष्ट नहीं होता।'' तय किया गया कि ज्योतिषी से विचार कराया जाय कि हार क्यों मिला और खूँटी क्यों गड़ी?

दोनों अपनी-अपनी कुण्डली लेकर ज्योतिषी के पास गये। उनकी विद्या बहुत बड़ी-चढ़ी थी। कुण्डली सामने रखी गई। ज्योतिषी ने एक कुण्डली उठाई, चौंका! ''यह व्यक्ति तो आज सवेरे मर गया होगा। सवेरे-सवेरे ऐसी कुण्डली क्यों ले आये?'' दोनों ने कहा-''महाराज! दूसरी कुण्डली भी देखें।'' ज्योतिषी ने देखा, बोला- ''विलक्षण कुण्डली है। इतनी शुभ कुण्डली तो हमने जीवन में कभी नहीं देखी। इस पुरुष को आज राजा होना चाहिए। मैं उस भाग्यवान से अभी मिलना चाहता हूँ।'' ज्योतिषी ने सोचा, होने वाले राजा से पहले ही मिल लेने पर धाक जम जायेगी, सदैव सम्मान मिलेगा।

भाइयों ने बताया कि कुण्डली हमी दोनों की है। ज्योतिषी ने कहा-''अरे! ऐसा कैसे हो सकता है। ज्योतिष तो गलत हो ही नहीं सकता। तुम अभी तक जीवित कैसे हो? बताओ तुम लोग करते क्या हो?'' छोटे भाई ने बताया, ''मैं नित्य महात्मा की सेवा में जाता हूँ, उनकी वाणी सुनता हूँ, उपदेशानुसार जीवन में कुछ ढालने का प्रयास करता हूँ, चिन्तन के लिये भी समय निकालता हूँ।'' ज्योतिषी ने सिर हिलाया और दूसरे भाई से पूछा- ''तुम क्या करते हो?'' वह बोला-''मैं तो शराब पीता हूँ, वेश्या के यहाँ जाता हूँ और यह भाई मुझ पर नित्य बिगड़ता है।''

ज्योतिषी ने समाधान किया कि तुम गलत करते हो। तुम्हारे छोटे भाई को आज मर जाना चाहिए, किन्तु महापुरुष के दर्शन, सत्संग, सेवा के प्रभाव से इसे मात्र खूँटी ही गड़ गई। इसकी आयु बढ़ गई। तुम्हें आज राजा होना चाहिए था किन्तु कुकृत्य करते-करते पुण्य क्षीण हो गया। एकाध लाख का हार मिल गया। दो-चार महिने में फूँक-तापकर उसे भी बराबर कर दोगे। फिर तो न पुण्य है न पुरुषार्थ। उस दिन से बड़ा भाई भी सत्संग में जाने लगा। बुराइयाँ छूट गईं।

अपराध एक प्रकृति है जिसका विकास आदमी की मानसिक और आत्मिक दुर्बलता से होता है। जब समाज उस दुर्बल भावना के विकास बिन्दु को बन्द नहीं कर पाता, तो अपराध भी होता रहेगा। आदमी अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन भी करता रहेगा।

- श्रीराम शर्मा

क्षत्रिय संस्कृति

– श्यामसिंह छापड़ा

क्षत्रिय संस्कृति की निर्मल धारा प्राचीनकाल से अविछिन्न रूप से प्रवाहित होती आ रही है। जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त परम्परा है यह। प्राचीन आर्य संस्कृति का मुख्य अंग है। यह संस्कृति वीरत्व से ओतप्रोत है, यह धर्मयुक्त है, यह सुसंस्कृत जीवन प्रणाली है, यह न्याययुक्त शासन प्रणाली वाली है, इसने रक्षा के लिये कभी प्राणों की परवाह नहीं की। इस संस्कृति में जीवन का प्रधान लक्ष्य सत पुरुषों की रक्षा, दुष्टोंका संहार और प्रजा सेवा के माध्यम से भगवत प्राप्ति है।

महत्त्वशाली स्वरूप के कारण क्षत्रिय संस्कृति को लोग आदर-भाव से निहारते थे। प्राचीन काल में आर्य संस्कृति का मुख्य अंग अपने उत्थान मार्ग पर उच्च शिविर पर सुशोभित था। क्षत्रियों की प्राचीन परम्पराएँ, चिंतन और मनन करने योग्य हैं। क्षत्रियों का रहन-सहन बहुत सरल था तो विचार बड़े उच्च थे। वे अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं करते थे। क्षत्रिय शास्त्र विद्या, शासन विद्या तथा शस्त्र विद्या से सम्पन्न होते थे। अपने देश व प्रजा की रक्षा में कोई कसर नहीं रखते थे। अपने दायित्वों को भली प्रकार निभाते थे। वे अपने वचनों के पक्के होते थे। गीता में वर्णित क्षत्रियों के स्वभाव के अनुसार ही शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध व संघर्षो से मुँह न मोड़ना, दान देना और ईश्वर भाव से प्रजा को पोषित करने के भाव जीवन में संजोए रखते थे। सत्य पथ पर आरूढ रहकर कर्तव्य पालन में अडिग रहने वाले क्षत्रियों के उदाहरणों से प्राचीन इतिहास भरे पड़े हैं। जाज्वल्यमान उस इतिहास से प्रेरणा लेकर अपना पथ प्रदर्शन करने की आवश्यकता है।

महाराज हरिश्चन्द्र का नाम भारत का प्रत्येक नागरिक भली प्रकार जानता है। सत्यवादी के रूप में उनका नाम विशेषण रूप में लिया जाता है। सत्य पर अटल रहे, हर आपत्ति, हर विपरीत परिस्थिति का सामना किया पर क्षत्रियों की सत्यवादी संस्कृति पर दाग नहीं लगने दिया। उनका अटल निश्चय था कि-

चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
दृढ व्रत हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार।।

चाहे सूर्य व चन्द्रमा अपना कार्य छोड़ दे, परन्तु क्षत्रिय अपनी सत्यता पर अटल रहेगा, क्षत्रिय संस्कृति का कैसा अनुपम आदर्श है।

क्षत्रिय अपने वचनों को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते थे। वे गौ, विप्र, हरिभक्त और सज्जनों की रक्षा करते थे। कठिन से कठिन समय में भी अपनी मर्यादा को नहीं त्यागते थे। श्री रामचन्द्र जी ने अपने पिता की आज्ञानुसार 14 वर्ष तक वनवास धारण किया। श्री लक्ष्मण जी ने वनवास में उनका साथ देकर भ्रातृप्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया, माता सीताजी ने पतिव्रत धर्म का अनुपम पाठ पढाया। युवक अपने माता-पिता की आज्ञा का पालन करते थे, स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म निभाती थी। भीष्म ने अपने पिता की अभिलाषा को पूरा करने के लिये आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और प्रतिज्ञा निभाने वालों के लिये 'भीष्म-प्रतिज्ञा' विशेषण बन गया। महाराणा प्रताप, दुर्गादास, शिवाजी आदि ने देश सेवा में ही अपना जीवन व्यतीत किया।

क्षत्रिय राजा अपनी प्रजा को पुत्र तुल्य समझते थे। वे शासन व्यवस्था में राजधर्म का पूर्णतया पालन करते थे। न्याय करने में अपने प्राण-प्यारे पुत्रों को भी यथायोग्य सजा देते थे। अपनी प्रजा के सुख-दुख के समाचार भेष बदलकर घूम-घूमकर प्राप्त करते और समस्याओं का निराकरण करना अपना कर्तव्य समझते थे। क्षत्रिय अपनी प्रजा का शासन नीति, न्याय, धर्म के अनुसार करते थे। प्राचीन समय में ही विधान सभाओं का निर्माण हो चुका था। इन्हीं सभाओं द्वारा राजा लोग राज्य का शासन प्रजा के प्रबुद्ध लोगों की राय से करते थे। अनुभवी ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य आदि को प्रजा के प्रतिनिधि रूप में इन सभाओं में सम्मिलित किया जाता था ताकि शासन व्यवस्था पर यथार्थ व व्यावहारिक चर्चा हो सके। खुले विचारों से देश व समाज के अनुकूल नीति-नियम बनाए जाते थे। राजाओं को अपनी नीतियों तथा मर्यादाओं की रक्षा करनी पड़ती थी।

राजस्थान इतिहास के विशेषज्ञ कर्नल टॉड ने क्षत्रियों के रक्षा सम्बन्धी प्राचीन महत्त्व को अपने शब्दों में दोहराया है- *There is hardly a village in Rajasthan that had not produced its Leonidas and hardly a town that had not seen its Thermopoly.* कर्नल टॉड ने जो विचार अपनी पुस्तक में प्रस्तुत किए वैसे ही विचार हिन्दी साहित्य के वीर रस के प्रसिद्ध कवि वियोगी हरि ने अपने शब्दों में पिरोये हैं-

मिली हमें थर्मोपोली ठौर-ठौर चहुंवास।
लेखिय राजस्थान में, लाखनु ल्यूनीडास।।

क्षत्रिय जीवन-शैली मात्र हिन्दु जाति को ही नहीं, वरन जगत् की समस्त जातियों को बतला रही है कि मानव धर्म, मानव कर्तव्य और मानव जीवन का क्या महत्त्व है। इस जाति के महापुरुष तो इतने ऊँचे स्तर तक पहुँच गए थे कि उनकी गणना अवतारों में हो गई। राजा जनक को विदेह, युधिष्ठिर को धर्मराज आदि उपमाओं से अलंकृत किया गया है। क्षत्रिय सदैव कीर्ति को अपना जीवन और अपकीर्ति को ही मृत्यु समझते थे। इसी पर अटल रहकर वे अपनी संस्कृति की शान को उज्ज्वल बनाए रखते थे।

क्षत्रियों की प्राचीन संस्कृति का स्वरूप बड़ा उच्च है। उनकी प्राचीन संस्कृति के कार्यों को यदि लिपिबद्ध किया जाय तो जीवन के हर क्षेत्र में प्रेरक आदर्श के उदाहरण मिल जाएंगे। राज्य और प्रजा के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाने में प्राणों की भी परवाह नहीं करते थे। प्राण त्याग तक भी उनका तेज मंद नहीं पड़ता था। श्री हरि ने भीष्म पितामह के बारे में सुन्दर शब्दों में कहा है-

प्रकृत-वीर कौ अंत हूँ, पर तु मंद नहिं तेज।
नहिं चाहत चंदन-चिता, भीष्म छांडि सर-सेज।।

अर्थात्- प्रकृत वीर का मृत्यु पर्यन्त भी तेज मंद नहीं होता है, जिस प्रकार भीष्म पितामह बाणों की शय्या छोड़कर चन्दन की चिता नहीं चाहते हैं।

क्षत्रिय संस्कृति की महिमा वीरांगनाओं ने भी प्रतिष्ठित की है। हजारों-हजारों रानियाँ हँसते-हँसते जौहर की चिता में आरोहण करती रही। अवसर आने पर युद्ध क्षेत्र में अपना शौर्य प्रकट करती रही। पुत्र के पथ-भ्रष्टता की आशंका पर उन्हें कर्तव्य-राह पर लगाती रही। अपना मस्तक भेंट कर पति को दायित्व से बचने और आसक्ति में उलझने से बचाती रही।

क्षत्रिय संस्कृति सर्वांग परिपूर्ण थी, सूर्य के समान प्रकाशमय थी। सभी प्रकार के अत्याचारों को मिटाने की शक्ति रखती थी। अपनी आदर्श परम्पराओं को निभाने और अपने स्वधर्म को निभाने में क्षत्रिय सदैव तत्पर रहते थे। इसीलिए भारत में ही नहीं समस्त संसार में यह संस्कृति आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। उनके उत्कृष्ट उदाहरणों को सुनकर लोग चकित रह जाते हैं। यह संस्कृति कर्तव्य पालन की राह पर चलने वालों के लिए सदैव आदर्श बनी रहेगी। आज हमें उसी राह पर बढने के लिये पुन: तैयार होना है। इसी में इस जीवन की सार्थकता है।

सत्य का सहारा लेकर जो संसार में पुण्य कर्म करने पर उतारू होते हैं, वे भूल जाते हैं कि अकेला सत्य पूर्ण नहीं है। वह शिव और सुन्दर भी होना चाहिए। अमंगलकारी ओर कुरूप सत्य से अशुभ और कुरूप सत्य ही प्रकट व प्रकाशित होगा। शुभ और सुन्दर होने पर ही सत्य पूर्ण बनता है और तभी वह लोक में आलोक स्थापित कर सकता है।

- पू. तनसिंहजी

विचार-सरिता

(षट्त्रिंशत लहरी)

- विचारक

वेदान्त का सिद्धान्त यह कहता है कि जो जानने में आता है वह कोई मायावी पदार्थ ही है तथा जिसने जाना है वह प्रकृति नहीं पुरुष है। जिसको जाना गया और जिसने जाना वे दोनों अलग-अलग हैं। ज्ञाता और ज्ञेय के बीच में ज्ञान है जिसके द्वारा ज्ञाता ज्ञेय को अनुभूत कर पाता है। यदि ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय की त्रिपुटी ही समाप्त हो जाय तो फिर केवल परम तत्व के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता और वह तत्व 'है' ऐसा अनुभूत होता है।

एक द्रष्टा है सामने दृश्य है। दृश्य की अपेक्षा से ही आत्मा को द्रष्टा कहा गया है। एकचित् है दूसरा चेत्य है। ऐसे ही एक प्रकाशक है, दूसरा प्रकाशित है। देह की अपेक्षा से ही जीवात्मा को देही की संज्ञा दी जाती है। शरीर की अपेक्षा से ही उस कूटस्थ आत्मा को शरीरी कहा गया है। देह रूपी रथ की अपेक्षा से आत्मा को रथी भी कहा जाता है। जड़ की अपेक्षा से ही चेतन की सिद्धि होती है।

इस पञ्चभौतिक देह को यदि हम अपना स्वरूप या अपना आप मान रहे हैं तो यह बड़ी भारी भूल हो रही है। जब तक देह को ही 'मैं' मानते रहेंगे तब तक दु:खों से पीछा नहीं छूट सकता। क्योंकि समस्त दु:खों की जड़ यह अविद्या है। अविद्या का स्वभाव है कि वह उल्टा बोध करवाती है। जो है वह दिखाई न दे और जो नहीं हो वह भ्रांति स्वरूप प्रतीत होना ही अविद्या का परिणाम है। अविद्या के कारण हम अनित्य में नित्य बुद्धि कर रहे हैं। इसी तरह असत् में सत्‌बुद्धि, अशुचि में शुचि बुद्धि व दु:ख में सुख बुद्धि, यह चार प्रकार की अविद्या कहलाती है। देह में आत्मबुद्धि का होना अर्थात् देह को ही अपना स्वरूप मानना सबसे बड़ा दु:ख का कारण है।

हमारा विचार जब तक यथार्थ नहीं होगा तब तक हमें परमतत्व की अनुभूति की कल्पना करना भी व्यर्थ है। जो देह क्षण-क्षण में विनाश की ओर अग्रसर हो रही है, जिसका मिटना निश्चित है, तथा वात-पित्त-कफ जन्य रोगों से सदैव घिरी रहती है और प्रारब्ध के अधीन ही जो टिकी हुई है। ऐसी असत् जड़, दुख और द्वैत रूप देह को अपना आपा मान लेना कि 'यह मैं हूँ' यह साधक के लिये बहुत बड़ा घाटे का सौदा होगा। वेदों में हमारे स्वरूप को तो सत्-चित्-आनन्द और एक कहा है जबकि इस पञ्चभौतिक देह के धर्म तो इससे बिल्कुल विपरीत हैं। ऐसे दुर्बुद्धिजन्य लोगों का कल्याण कैसे हो सकता है जो शरीर के जन्म को अपना जन्म, शरीर की वृद्धि और आयु के साथ अपनी वृद्धि व आयु मान रहे हैं। शरीर की बीमारी को अपने में आरोपित किये बैठे हैं तथा शरीर की जरा व मृत्यु के साथ ही अपने आपको मरने वाला मान रहे हैं। शरीर के लंगड़ेपन को अपना लंगड़ापन तथा शरीर के अंधपने को अपना अन्धापना मान रहे हैं। शरीर के समस्त विकारों को जो अपना विकार मानकर दुखी और दीन बने बैठे हैं उनका यह जीवन व्यर्थ ही चला जाएगा।

आप प्रकाशक हो। यह देह प्रपञ्च तो आप से ही प्रकाशित हो रहा है। नेत्र की ज्योति ही वास्तव में आँख है। बाहर से दिखने वाली जो आँख है वह तो चक्षु इन्द्रि का गोलक है। कई बार आँख का गोलक तो जैसा था वैसा ही प्रतीत होता है पर नेत्र की ज्योति चली जाती है तो आँख किसी भी दृश्य की जानकारी नहीं कर सकती। इसलिए हमें यह समझना है कि जो स्वयं देखने वाला है वह अदृश्य होकर भी सब देख रहा है पर उसे अन्य आँख आदि देख ही नहीं सकते। आप ही आपको जानने वाले हो। आप ही स्वयंप्रकाशी हो। आपकी ही चेतना से यह देह हरी भरी दिखती है, हँसती है, बोलती है नहीं तो इस जड़ीभूत देह में क्रिया कहाँ। देह तो अचेतन और जड़ है। जो तत्व जैसा है उसे ठीक वैसा समझ लेना ही साधक की समझदारी है। साधक की साधना इसी में है

कि वह जो जड़ है उसे निश्चयात्मक बुद्धि से जड़ समझ ले और जो अपना चेतन स्वरूप है उसे अपना आपा जान ले। यही सबसे बड़ी साधना है।

ऐसे कल्याणकारी बोध के लिये यह मानव देह एकमात्र अवसर है। ऐसा अवसर आगामी समय में फिर कभी आए यह आवश्यक नहीं है। अत: इस क्षणभंगुर जीवन की सार्थकता इसी में है कि हम हमारे स्वरूप को ठीक-ठीक समझकर उसमें स्थिति पा लेवें तो इसी का नाम जीवन है। इसी का नाम अमृत्व है।

मनुष्य जीवन की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके रहते-रहते हम कृतकृत्य हो सकते हैं। धनधन्य हो सकते हैं। यह अवसर चूक गए तो फिर न जाने कितनी अन्य योनियों की यात्रा करनी पड़ सकती है। अत: जब तक प्रारब्ध शेष है और हृदय की धड़कन चालू है तब तक एक-एक पल को कीमती समझकर उसका लाभ लेना चाहिये। इसी का नाम मनुष्यता है। स्वयं से स्वयं का बोध ही पूर्ण सच है।

ॐ तत् सत्! ॐ तत् सत्!! ॐ तत् सत्!!!

मेरा हाल बेहाल हो गया

– भंवरसिंह भरपालसर

आवो बच्चो तुम्हें बतलावुं, दादीसा री दुआ भूल गया।
खट्टे-मीठे बेर भूल गया, चावल मुट्ठी तीन भूल गया।।
मित्रता का मोल भूल गया, गीता वाला ग्यान भूल गया।
नुंई सदी का देख कम्प्यूटर, कलम चलाना चाल भूल गया।।
मोबाइल में नम्बर लिखकर, ठौड़-ठिकाणां जांण भूल गया।
झूठ बोलण रो लियो खिलोणो, कांण-कायदा शान भूल गया।।
शहर में आकर के बस गया, गाँव गळी की राह भूल गया।
पढ्योड़ा-लिख्योड़ा टाबर भी, बुजुर्गां का नाम भूल गया।।
हलो-हलो करै लोगड़ा, रामा-श्यामा कदर भूल गया।
निर्लज्जता को दामन थामकर, खंखारै ने मर्द भूल गया।।
उघाड़ै मुण्डै आया बीनणी, समझदारी को साथ भूल गया।
अंगरेजी भाषा सूं भरम्यो, मायड़ भाषा का मर्म भूल गया।।
कामचोर दफ्तर में बैठ्या, कर्म पथ की डगर भूल गया।
चोळो-पजामो शौक पाळलियो, धोती-कुर्ता पाग भूल गया।।
नेतागिरी सूं नातो जोड़कर, मा-बाप रो फर्ज भूल गया।
जात-कुजात सब बण्या भिखारी, मुफ्त खाणों कर्ज भूल गया।।
सड़ी-गळी मान्यता मान ली, परहित सरिस धर्म भूल गया।
पंचायत में बैठ चौधरी, भाग्य की पतवार भूल गया।।
स्वार्थ का बण गया सारथी, 'संघशक्ति' रा भाव भूल गया।
मेरा हाल बेहाल हो गया, खाई बाटी लूण भूल गया।।

लोकतंत्र का दिल्ली दरबार

– स्व. भंवरसिंह जी बेण्यांकाबास

'ओ रे जीव! कौन है तू? कैसे पहुँचा हमारे दरबार तक? क्या अनुसूचित जाति का है? क्या अनुसूचित जनजाति का है? क्या पिछड़ा हुआ है? या क्या अल्प संख्यक है? सच बता तू कौन है?''

''महाराज! सच-सच कहूंगा, सच के अलावा कुछ नहीं कहूंगा।'' जीव बोला-''न मैं अनुसूचित जाति से हूँ, न मैं अनुसूचित जन जाति से हूँ, पिछड़ा वर्ग या अल्प संख्यक वर्ग से भी नहीं हूँ। मैं तो स्वतंत्र भारत का नागरिक हूँ। लोकतंत्र में समान अवसर चाहता हूँ। इस महंगाई में बच्चे भूखे हैं, वे पोषण चाहते हैं।''

''अच्छा समझ गया तू सवर्ण वर्ग से है।'' व्यंग से मुस्कराते हुए दरबार बोले-''पोषण चाहता है, अरे मूर्ख भूल गया अपनी पुरानी करतूतें। एक ही झटके में हो गया धराशायी। तुमने तो सदियों से शोषण किया है, अब चाहता है पोषण। तुझे नहीं भाता अन्यों का आरक्षण, पर अभी तो बहुत बाकी है तुम्हारा ऋण।''

जीव बोला-''महाराज! न्याय कीजिए, आप विक्रमादित्य की कुर्सी पर बैठे हैं।'' कड़क कर बोले भारताधिपति,-''तू रहा भोला-भाला, निरा मूर्ख, पर अन्दर से जरूर काला दिखता है। हमारे राज में न्याय चाहता है? हा-हा-हा विक्रमादित्य वाला न्याय चाहता है, जहाँ न कोई वकील होता था और न कोई न्यायाधीश होता। केवल वादी-प्रतिवादी और राजा होते थे वहाँ। तेरी इतनी हिम्मत की तू फिर से विक्रमादित्य जैसी बात करके सामन्तवाद लाना चाहता है। हमने अनेक न्यायालय खोल रखे हैं, जहाँ तेरे स्वागत के लिये अनेक वकील बाट देख रहे हैं। जा, वहाँ जाकर फरियाद कर।''

जीव बोला-''परन्तु......''

बीच में ही त्यौरियाँ चढा कर राजाजी बोले,-''हम समझ गये तू नौकरी चाहता है। तू आरक्षण का विरोधी है। कान खोलकर सुनले, हमने 12% दिया है, हमने 16% दिया है, हमने 21% दिया है, हमने 5% दिया है, हम 14% दे रहे हैं, हम 13% की सोच रहे हैं, हम 30% का वादा कर चुके हैं, आगे मंत्री मण्डल में विचार चल रहा है।''

''परन्तु महाराजा यह तो 111% हो गया।'' जीव ने कहा।''

''तो क्या हो गया, कौनसी अनहोनी बात हो गई। हमने व्यवस्था बदली है। एक और एक जब ग्यारह हो सकते हैं तो एक, एक और एक एक सौ ग्यारह क्यों नहीं हो सकते?'' राजाजी बोले।

''हमने ऋण माफ किए हैं, हम सबको काम देंगे, घर बैठे भत्ता देंगे। घोषणा पत्र के सभी वादे पूरे करने हैं हमको क्योंकि आगे भी सत्ता में रहना है।'' राजाजी ने उपलब्धियाँ गिनाई।

''किन्तु महाराज'' जीव बोला-''महंगाई......।''

बीच में ही कड़क कर महामहिम बोले,-''देख मेरे पास समय की कमी है। क्या, किन्तु, परन्तु की रट लगा रखी है, क्यों बार-बार घिसी-पिटी बातें दोहरा रहा है- महंगाई, गरीबी, सुरक्षा केवल यही रट लगा रखी है। तू नहीं जानता कि महंगाई तो विश्व की गति के साथ बढेगी ही। रहा सवाल गरीबी का जो हमने गरीब और गरीबी दोनों को ही हटा दिया है। सुरक्षा पर हम नजर रखे हुए हैं, अब संतरियों की संख्या भी बढा ली है। पंजाब को हम देख चुके हैं, कश्मीर को हम देख रहे हैं। पूरब और दक्षिण को हम देख लेंगे। थोड़ी सी अराजकता पनपी है, इसको अभी बढते देखना चाहते हैं। एक ही हथियार से सबको संभाल लेंगे। अब तू जा सकता है, परन्तु चुनाव के समय ध्यान रखना। फिर मिलेंगे।''

जीव जैसे गया था, लौट आया-'बेआबरू होकर।'

मधुर व स्वस्थ जीवन

– रश्मि रामदेरिया

सुख-शान्तिपूर्वक जीवन यापन करना जीवन की बड़ी उपलब्धि है। हम अपनी दीन-हीन भावना का त्याग करें, हमारा जीवन अमूल्य है। संसार में लाखों-करोड़ों की संख्या में चिकित्सालय और चिकित्सक हैं, हर प्रकार के सुविधा के उपकरण हैं, फिर भी संसार की आधी से ज्यादा संख्या रुग्ण है, दुखी है। सम्पदा और साधनों में सुख ढूंढ़ने का प्रयास किया जाता है, पर सुखी वह नहीं है जिसके पास पैसों से खरीदी आरामदायक हर वस्तुएँ हैं वरन सुखी वह है जो चैन की नींद सोता है और स्वस्थ मानसिकता का मालिक है।

स्वच्छता, सच्चाई, दया और तपस्या आदि स्वस्थ जीवन के नियम हैं। हमें शान्त, क्षमाशील तथा दयालु जीवन जीने का अभ्यास करना चाहिए। बहुत-सी बीमारियाँ पहले मानसिक स्तर पर होती हैं तथा बाद में शारीरिक तल पर आ जाती हैं। यदि हम अपने साथ हुई विपरीत घटना पर दुखी रहेंगे तो हम केवल स्वयं को ही हानि पहुँचाएँगे। यदि उत्साह पूर्वक भरसक प्रयत्न करें तो सफलता भी मिल सकती है और जीवन में सब कुछ सुधर सकता है।

शांत चित्त स्वर्ग है, अशान्त चित्त नरक। प्रसन्न ह्रदय स्वर्ग है, उदास मन नरक। यह व्यक्ति पर ही निर्भर करता है कि वह अपने आपको नरक की आग में झुलसाए रखना चाहता है या स्वर्ग की मधुवन में आनन्द भाव से अहोनृत्य करना चाहता है। स्वस्थ, सुन्दर और मधुर जीवन के लिये हमें जीवन के बहुआयामी पहलुओं की ओर ध्यान देना होगा। स्वस्थ जीवन के लिये सात्विक आहार आवश्यक है। कहावत कहती है-''जैसा खावे अन्न, वैसा रहे मन''। जीवन के लिये तन व मन की शक्ति का उपार्जन व संरक्षण अनिवार्य है। भोजन की सात्विकता के साथ शरीर के विभिन्न अवयवों के स्वस्थ संतुलन हेतु थोड़ा व्यायाम भी आवश्यक है। शरीर की जो कोशिकाएँ सुप्त या शिथिल पड़ी हैं, व्यायाम से वे भी सक्रिय होकर सहभागी बन जाती हैं।

बुद्धिमान पुरुष काम करने से पहले सोचता है, समझदार व्यक्ति काम करते समय सोचता है, जबकि मूर्ख काम करने के बाद सोचता है। प्रकृति का श्रेष्ठ उपहार है बुद्धि। बुद्धि के प्रयोग से समय का सदुपयोग किया जा सकता है। अत: हर कार्य करने से पूर्व अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

निन्दा-प्रशंसा, अमीरी-गरीबी, हानि-लाभ दोनों ही स्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखें। तकलीफ को पाकर दुखी न हुआ जाए। विश्वास बना रहे, ईश्वर के घर में अंधेरा नहीं है। जीवन में एक द्वार बन्द होता है तो दूसरा द्वार खुल भी जाया करता है। यदि कोई हमारे साथ गलत व्यवहार करे, हमारी उपेक्षा करे तो दुखी और क्रोधित न होकर उसके प्रति अपने ह्रदय में क्षमा और करुणा के मेघ उमड़ने दें ताकि हमरा चित्त तो शीतल रहे ही, संभव है हमारे कारण सामने वाले का क्रोध भी शीतल हो जाए। विपरीत परिस्थितियों को अपनी प्रसन्नता छीनने का अधिकार न दें।

कोशिश करें कि हम प्रतिदिन एक अच्छा कार्य अवश्य करें। किसी से भी मिलें तो मुस्कुरा कर मिलें। अपनी आजीविका में से एक अंश जरूरतमंद लोगों एवं कल्याणकारी कार्यों के लिये समर्पित करना चाहिए। पशु-पक्षियों के लिये, पेड़-पौधे के लिये खुराक-पानी देते रहेंगे तो महसूस होगा कि केवल कमाते रहना ही सुख नहीं देता बल्कि प्राणियों को दिया गया सहयोग हमारा सुख और माधुर्य बढाता है। हम जीवन को इस तरह जीएं कि हमारा जीवन स्वयं प्रभु का प्रसाद बन जाए। सेवा करना ईश्वर का भजन ही है और भगवान तो अपने भक्त के लिये कहते हैं –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाव।
साधुरेव स मन्तव्य: सम्यग्व्यवसितो हि स:।।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।

अर्थात्- यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परमशान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

प्राय: जब लोग संकट में होते हैं तो वे सहायतार्थ ईश्वर की ओर उन्मुख होते हैं; आवश्यकता पड़ने पर सहायता ढूंढ़ना सहज बात है लेकिन अच्छा तो यह है कि हम सदैव भगवान का आश्रय लें। ईश्वर रचित इस सृष्टि में प्राणियों के प्रति सेवा भाव बनाए रखें और सांसारिक दायित्वों से भी ऊपर भगवान की भक्ति में मन को लगाएँ ताकि हमारा जीवन मधुर व स्वस्थ बन सके।

❊

पृष्ठ 13 का शेष

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

तारीख 8.2.56 को जब डॉक्टर भूख हड़ताल में पूज्य श्री तनसिंहजी की हालत देखने आए तब संयोगवश ही बातचीत चली तो पूज्य श्री ने बताया-''मैंने उन्हें कानून बताया कि समाचार पत्र धींगामस्ती में ही रोके जा रहे हैं। जेलर व कलेक्टर भी मान गये कि हमारे निजी खर्च पर अखबार मंगाये जावेंगे तो उन्हें सरकार नहीं रोक सकती।''

नियमों को ताक में रखकर समस्त अधिकार सरकार ने अपने हाथों में ले रखे थे। समस्त अधिकार सरकार के इशारों पर ही सम्बन्धित अधिकारी प्रयोग में लाते थे। पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''अधिकारियों की शुरू से यह धारणा रही है कि हम नजरबन्द लोग साधारण कैदियों से भी अधिक खतरनाक हैं और उन्हें आराम से रहने देना और संवैधानिक सुविधाएँ देना भी सरकार को नाराज करना है। उनकी धारणा में नियम जो सरकार ने पास किये हैं वे नजर बंदियों को सिर्फ बताने के लिये हैं न कि अधिकारियों के लिये व्यवहारिक रूप में प्रयोग में लाने के लिये। जब सब प्रकार से प्रयास करने के पश्चात् भी और अपने पैसों से राष्ट्रदूत और वीर अर्जुन नहीं खरीद कर दिया गया तो मैंने भी दूसरे मार्ग से हल निकालने का विचार कर लिया।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''अचानक मुझे यही विचार आया कि भूख हड़ताल से यदि शरीर को कष्ट देना है तो सर्दियों में कपड़े न पहनना, गर्मियों में धूप में खड़े रहना और बरसात में पानी में भीगते रहना भी एक तपस्या है। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया कि जब तक सवाईसिंहजी को मेरे साथ नहीं कर दिया जाता, मैं कपड़े नहीं पहन सकता। मैंने तो उस दिन तारीख 8.2.56 को लज्जा ढकने के अतिरिक्त सभी कपड़े फेंक दिये। शाम के वक्त जेलर आया, मैंने कपड़े नहीं पहन रखे थे। सर्दी बहुत पड़ रही थी और मैं सर्दी से कांप रहा था। बैरक बंद होने के बाद वह मेरे पास आया और कहा कि मैं लाचार हूँ और साथ ही साथ बेबस भी। मुझे जिलाधीश ने धमकी दी है कि नौकरी करनी है कि नहीं। यदि नौकरी करनी है तो उनको अलग रखो। उस समय वह चला गया और रात को वह फिर वापिस आया। मैं बुरी तरह से ठिठुर रहा था, उसकी सूरत रुआंसी हो गई। उसने मुझसे सलाह मांगी कि अब मैं क्या करूं, मैंने उसे सलाह दी कि तुम इसी वक्त लिखित में एक पत्र जिला मजिस्ट्रेट को भेजो कि सर्दी बहुत पड़ रही है और आपके जुबानी हुक्म के अनुसार मैंने दोनों को पृथक कर दिया है। अब भी यदि आप चाहते हैं कि ऐसी सर्दी के बावजूद भी उन्हें अलग रखा जाय तो कृपया उत्तर दें। उसने वैसा ही लिखा किन्तु जिलाधीश ने कोई लिखित में उत्तर नहीं दिया और टेलीफोन पर ही कहा कि ऐसी बात है तो उनको शामिल कर दो। रात को एक बजे बैरक खोलकर हमको शामिल कर दिया गया और हमने कपड़े पहन लिये। हमारे आपस में समझने के बाद जेलर ने हमें विश्वास दिलाया कि कल मैं समाचार पत्र दे दूँगा और आप लोग खाना खा लीजिए। इस पर रात्रि को हमने चाय पीकर भूख हड़ताल तोड़ दी।'' ***(क्रमश:)***

संयम

– युधिष्ठिर

पूज्य श्री तनसिंहजी प्रकट हुए बगैर ही चले गए। बाला सतीजी ने भी कहा–''आप छुपे हुए क्यों रहते हो, प्रकट क्यों नहीं होते।'' लोग आज भी भ्रम में हैं। लोग भ्रम में हैं यह बात तो समझ में आती है, पर हम उनके अनुयायी भी भ्रम में हैं। क्षत्रिय युवक संघ कोई संगठन नहीं आश्रम प्रणाली है, जो युगों से चली आ रही है। जिसआश्रम प्रणाली से हर महापुरुष गुजरा, उसी आश्रम प्रणाली से आज हम गुजर रहे हैं। सही में इस आश्रम प्रणाली की रचना ईश्वर ने की है। आज वह हमारे सामने क्षत्रिय युवक संघ से है। यह किसी धर्म-मतों से संबंधित नहीं है। यह न ही किसी धर्म का समर्थन करता है और न ही किसी धर्म का विरोध करता है। यह किसी जाति से संबंधित नहीं। राजपूतों ने क्षत्रिय को अपना शब्द समझा, दूसरी जातियों ने इसे राजपूतों का शब्द समझा। इसका नाम ऐसा इसलिए रखा ताकि अधिकारी इसे समझ जाए और अनअधिकारी इससे दूर रहे। जो अपनी आत्मा की रक्षा करे और जो दूसरों की आत्मा का अहित न होने दे वह क्षत्रिय है। अब देख लो हम कितनी गलतफहमी में जी रहे थे।

महापुरुष के लिये कोई जाति विशेष और कोई जाति बिलकुल महत्त्वहीन हो, ऐसा नहीं है। खेल वातावरण का है। वातावरण ही भगवान बनाता है। तनसिंहजी को यह पता था, नहीं तो भाषणों से ही काम चल जाता। हर कोई कहता है हम मन के गुलाम हैं। हम मन के गुलाम नहीं मन हमारा गुलाम है। मन को जैसा अभ्यास कराओगे वो वैसा ही बनता है। तनसिंहजी ने मन को संयम का अभ्यास कराने की व्यवस्था की। संयम से व्यक्ति को दृष्टि आती है जहाँ से खड़ा होकर वह सोच-समझ सके। संयम मन को दौड़ने से रोकता है। संयम मन को स्वस्थ बनाता है। तनसिंहजी ने सच कहा था यह ईश्वरीय कार्य है। नाम इसका बदल सकता है पर परिणाम कभी नहीं बदल सकता। मन जब खाली होता है व्यक्ति अच्छा महसूस करता है।

दौड़ना गलत है। दौड़ना अपराध करवाता है। दौड़ता कौन है? मन! दुनिया का एक प्रश्न-''मैं सही कर रहा हूँ या गलत?'' जो काम आपसे मानसिक मेहनत करवाए, वह गलत है। जो काम आपसे मेहनत करवाए वह गलत है। दुनिया का सबसे खराब शब्द सफलता। जो काम आपको संग्रह करना सिखाए वह गलत है। तनसिंहजी को बहुत अच्छी तरह पता था कि बाहर का अभ्यास मन पर संस्कार डालता है यानी कि अगर आप बाहर दौड़ते हो तो आपका मन भी दौड़ता है। और बाहर का दौड़ना और मन का दौड़ना दोनों ही घातक हैं। बाहर का दौड़ना ज्यादा घातक है क्योंकि इससे आपकी जीवन लीला भी समाप्त हो सकती है।

संयम और अभ्यास भगवान श्रीकृष्ण ने दो बहुत ही अच्छे शब्द बताए। अब बहुत ध्यान से सुनना। संयम और अभ्यास दोनों बराबर में इस्तेमाल होने वाले हथियार हैं। दोनों को एक साथ याद रखना चाहिए और अब तो इन दोनों का महत्त्व बहुत ज्यादा बढ गया है। अभ्यास तो सबको पता है पर अभी तक संयम को हम समझ नहीं पाए। संयम हमें बताता है कि हमें किसका अभ्यास करना चाहिए। सही और गलत की परख संयम करवाता है। इसलिए दोनों का बराबर महत्त्व है, और यदि ज्यादा महत्त्वपूर्ण है तो संयम है। संयम हममें सजगता लाता है। संयम हमारे भीतर आनन्द की स्फूर्ति करता है। इसलिए तनसिंहजी ने संयम को आधार बनाकर क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना कर डाली। जीवन में सरलता आए, सरसता आए और जो कार्य मानसिक शान्ति दे वह श्रेष्ठ है। वह काम सही है।

हम तकलीफ इसलिए पा रहे हैं क्योंकि हम जो बताया जाता है वो नहीं करते। मनुष्य को भगवान ने

बनाया और मनुष्य ने भी बहुत कुछ बनाया। मनुष्य, मनुष्य का कहना मान रहा है पर भगवान का नहीं। और जब तक मनुष्य, मनुष्य का कहना मानता रहेगा वह तकलीफ पाता रहेगा। किसी काल परिस्थिति में यह क्षमता नहीं की वह भगवान को रोक सके। हम बस अन्धाधुन्ध तीर चलाते जा रहे हैं। न तो यह प्रतियोगिता सत्य है। न यह तीर सत्य है। न यह धनुष सत्य है। न यह लक्ष्य सत्य है। न जो तीर चला रहा है वह सत्य है और न ही जिसने तीर चलाने के लिये कहा वह सत्य है। पुराना ही सत्य है, नया तो जीवन को तोड़-मरोड़कर रखने वाला है। एक शब्द में कहूँ तो ''जैसे साधु जीवन जीते हैं वैसे जीवन जिओ'' सब कुछ सही हो जाएगा। आश्रम प्रणाली और ईश्वर में कोई फर्क नहीं। आश्रम प्रणाली का कभी अन्त नहीं हो सकता। आश्रम प्रणाली की रचना ईश्वर ने की है और जो व्यक्ति ईश्वर को जानना चाहता है उसके लिये की है। इसे कोई युग रोक नहीं पाया और न ही रोक पाएगा। इसे कोई असुर समाप्त नहीं कर सकता। यह ईश्वर का रूप होने के कारण इसने कई असुरों का नाश किया है। इसकी उपयोगिता कभी समाप्त नहीं हो सकती।

मन में और रोबोट में कोई फर्क नहीं। मन अच्छा भी है और नहीं भी। मन जैसा आज्ञाकारी दुनिया में और कोई हो नहीं सकता। जिस तरह रोबोट को कोई आदेश दो, वो तुरन्त उस कार्य को करने में लग जाता है, ठीक इसी तरह मन को जो आदेश मिला वह उसे ही सही मान लेता है। मन का किसी से कोई लगाव नहीं। उसके लिये कोई शत्रु या मित्र नहीं। उसे कोई अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। उसके सामने जो फेंको वही सही। तो फिर मन गलत कैसे हुआ? मन गलत इसलिए हुआ क्योंकि उसमें समझ नहीं। संयम का अभ्यास बुद्धि से होता है। लेकिन अभ्यास मन को मिटा सकता है।

आपका प्रश्न ''दुनिया में सबसे महान व्यक्ति की पहचान कैसे हो?'' अपने से बड़ों के साथ तो सबका व्यवहार अच्छा ही होता है। जिसका अपने से नीचे वालों के साथ भी महान व्यवहार हो, वो दुनिया का सबसे महान व्यक्ति है। जिसके जीवन की सरलता इतनी बड़ी है कि गुरु के चरणों में रहने के अतिरिक्त कोई इच्छा नहीं। जिसकी स्थिर बुद्धि को नया संसार रचना ही पसन्द न हो। जिसके अन्दर सब कुछ समाहित हो जाए और वो किसी में भी समाहित न हो। जो अपने स्वरूप को कभी न भूले। जिसके लिये स्वयं से ज्यादा गुरु का महत्त्व हो। वही महान।

*

संयम का फल

प्रात:काल सम्राट पुष्पमित्र के अश्वमेध की पूर्णाहुति हो चुकी थी। रात्रि में अतिथियों के सत्कार में नृत्योत्सव था। जब वहाँ महर्षि पतंजलि आए तो उनके शिष्य के मन में गुरु के व्यवहार के औचित्य के विषय में शंकाशूल चुभ गया। उस दिन से उसका मन महाभाग्य और योगसूत्रों के अध्ययन में नहीं रमा।

एक दिन महर्षि पतंजलि चितवृत्ति-निरोध के साधनों पर प्रवचन कर रहे थे। शिष्य चैत्र ने यह प्रश्न किया- ''गुरुदेव! कथा, नृत्य-गीत और रस-रंग भी चितवृत्ति-निरोध में सहायक हैं?''

महर्षि पतंजलि बोले-''वत्स! वास्तव में तुम्हारा प्रश्न तो यह है कि क्या उस रात मेरा सम्राट पुष्पमित्र के नृत्योत्सव में शामिल होना संयम-व्रत के विरुद्ध नहीं था? वत्स, तुमने संयम के सही अर्थ को नहीं समझा, समझ लो सौम्य! आत्मा का स्वरूप है रस। उस रस को परिशुद्ध और अविकृत रखना ही संयम है। विकृति की आशंका से रस विमुख होना ऐसा ही है, जैसे कोई कृषक भेड़-बकरियों के भय से खेती करना छोड़ दे। यह संयम नहीं, पलायन है और आत्मघात का दूसरा रूप है।''

गुरुदेव के ज्ञान से शिष्य के मन से शंकाशूल निकल गया।

भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक...पर्यावरण सुरक्षा वाली

- आचार्य कनकनन्दी

भारतीय संस्कृति आत्मिक वाली.......... आत्मा को परमात्मा बनाने वाली।
अहिंसा-सत्य अपरिग्रह वाली.......... पर्यावरण सुरक्षा करने वाली।।
तीर्थंकर-राम-कृष्ण वाली.......... ऋषि-मुनि-बुद्ध-ज्ञानी वाली।
अहिंसक-दानी-सेवा वाली.......... वैज्ञानिक-आयुर्वेदज्ञ-कवि वाली।।
''अहिंसापरमो धर्म'' बताने वाली..........'' ''जीओ और जीने दो'' कहने वाली।।
''परस्परोपग्रहो जीवानां'' वाली.......... दया-दान-सेवा सहित वाली।।
सत्य-समता-शान्ति वाली.......... चार पुरुषार्थ सहित वाली।
अन्याय-अत्याचार रहित वाली.......... शोषण-मिलावट रहित वाली।।
अचौर्य-ब्रह्मचर्य सहित वाली.......... त्याग-संतोष सहित वाली।
सादा जीवन उच्च विचार वाली.......... संग्रह-लोभ रहित वाली।।
जीव को जिनेन्द्र बनाने वाली.......... आत्मा को परमात्मा बनाने वाली।
सत्य अन्वेषण करने वाली.......... शोध-बोध व प्रयोग वाली।।
''वैश्विक कुटुम्ब'' सहित वाली.......... ''वैश्विक कल्याण'' भावना वाली।
इह परलोक सुख देने वाली.......... अभ्युदय-निःश्रेयस सुख वाली।।
जैन-वेदिक-व बुद्ध वाली.......... वैश्विक संस्कृति की हो जननी।
चार आश्रम व्यवस्था वाली.......... सर्वत्याग से मुक्ति देने वाली।।
तो भी भारतीय तुझे भूल रहे हैं.......... स्व-संस्कृति को त्याग रहे हैं।
हिंसा-परिग्रह से लिप्त हो रहे.......... भोग-विलासिता में मस्त हो रहे।।
स्वावलम्बन सदाचार त्याग रहे हैं.......... सादा जीवन उच्च विचार छोड़ रहे हैं।
कृत्रिम-यांत्रिक जीवन जी रहे हैं.......... दिखावा-आड़म्बर कर रहे हैं।।
फैशन-व्यसन में मस्त हो रहे हैं.......... तृष्णा व आसक्ति बढ़ा रहे हैं।
प्रकृति-पर्यावरण शोषण कर रहे.......... विभिन्न प्रदूषण फैला रहे हैं।।
अस्त-व्यस्त-संत्रस्त हो रहे.......... आधि-व्याधि पीड़ित हो रहे।
स्व-कुकृत्यों का फल भोग रहे.......... तो भी कुकृत्य न छोड़ रहे हैं।।
भौतिकवादी पाश्चात्य जाग रहे हैं.......... प्रकृति संरक्षण भी कर रहे हैं।
विश्वगुरु भारत को पढ़ा रहे हैं.......... तो भी भारतीय न जाग रहे हैं।।
दिखावा-स्वार्थ की पढ़ाई कर रहे.......... रूढ़िवादी धार्मिक बन रहे हैं।
नकलची आधुनिक बन रहे.......... साक्षर राक्षस भी बन रहे।।
अभी तो विकृतियाँ भारतीय त्यागो.......... स्व-पर-विश्वहित हेतु करो पुरुषार्थ।
इह परलोक हित करो पुरुषार्थ.......... तुम्हें आह्वान करें सूरी कनक।।

गंगाजी को पी जाने वाला राजा जूहू

– हनुवन्तसिंह नंगली

अयोध्या में सगर नाम के एक यशस्वी राजा हुए। इनके दो पत्नियाँ थी पर कोई पुत्र नहीं था। महाराजा सगर पुत्र हेतु हिमालय पर जाकर तपस्या करने लगे। इनकी तपस्या से प्रसन्न हो महर्षि भृगु ने पुत्र प्राप्ति का वर दिया। कुछ समय पश्चात पहली पत्नी केशनी ने एक पुत्र असमञ्ज को जन्म दिया। दूसरी पत्नी ने एक गर्भपिण्ड उत्पन्न किया जिसको फोड़ने से साठ हजार बालक निकले। जेष्ठ पुत्र असमञ्ज क्रूर प्रवृति का था इस कारण पिता ने उसे नगर से निकाल दिया। असमञ्ज के अंशुमान नामक पुत्र था जो बड़ा ही धर्मात्मा था। राजा सगर ने यज्ञ करने का निश्चय किया। इस यज्ञ में यज्ञ पशु घोड़े की रक्षा का भार पौत्र अंशुमान ने लिया। राजा सगर के इस घोड़े को इन्द्र ने राक्षस रूप धारण कर चुरा लिया। राजा सगर ने अपने पुत्रों को घोड़े की खोज हेतु भेजा। सगर पुत्रों ने पृथ्वी का चप्पा-चप्पा खोज डाला और कहीं अश्व नहीं मिला। राजा सगर ने पुत्रों को फिर पृथ्वी को खोदने हेतु भेजा। सगर पुत्र पुन: भूमि खोदने के काम में जुट गए। इस बार सगर पुत्रों ने भगवान कपिल को देखा और उनके आश्रम के पास ही उस घोड़े को देखा पर कपिल मुनि को चोर समझकर उन्हें बहुत बुरा भला कहा और उनका अपमान किया। कपिल मुनि को इस पर बड़ा क्रोध आया। उनके मुँह से एक हुंकार निकली जिससे सगर के वे सभी पुत्र जलकर राख का ढेर हो गये।

बहुत दिनों तक जब सगर पुत्र लौटकर नहीं आये तो उन्होंने फिर पौत्र अंशुमान को यज्ञ के घोड़े व उसके चाचाओं को ढूंढने भेजा। अंशुमान उनको ढूंढते हुए उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उसके चाचा राख के ढेर हुए पड़े थे। अंशुमान ने वहाँ अश्व को भी चरते देखा। अंशुमान रोने लगा। अंशुमान को फिर गरुड़जी दिखाई दिए। उन्होंने उसे उस घोड़े को ले जाने को कहा और हिमवान की जेष्ठ पुत्री गंगा के जल से चाचाओं का तर्पण करने को कहा। अंशुमान यज्ञ पशु को ले आया और सब बात दादा सगर को बता दी। राजा सगर यज्ञ पूरा कर अपनी राजधानी लौट आये। गंगाजी के विषय में वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाये। सगर तीस हजार वर्ष तक राज्य कर स्वर्ग को चले गए।

राजा सगर की मृत्यु के पश्चात् अंशुमान राजा बना। अंशुमान बड़े प्रतापी थे। उनके एक पुत्र था जिसका नाम दलीप था। अंशुमान दलीप को राज्य सौंप तपस्या हेतु चले गए। दलीप अपने पितामहों के कल्याण हेतु बहुत दुखी रहता था। पूर्वजों के उद्धार की चिंता से दलीप की मृत्यु हो गई इसके पश्चात् दलीप का पुत्र भागीरथ राजगद्दी पर बैठा। भागीरथ के कोई संतान नहीं थी। भागीरथ फिर गंगाजी को पृथ्वी पर उतारने के प्रयत्न में लग गये। भागीरथ ने इस हेतु कठोर तपस्या की और भगवान शंकर को भी तपस्या से गंगाजी को सिर पर धारण करने के लिये तैयार किया। भगवान शंकर गंगाजी को सिर पर धारण करने को तैयार हो गये। गंगाजी फिर बड़ा रूप धारण कर भगवान शंकर के मस्तक पर गिरी। गंगाजी ने उस समय सोचा कि प्रखर प्रवाह के साथ शंकरजी को लिये हुए पाताल में घुस जाऊँगी। भगवान शंकर यह जानकर कुपित हो गये और उन्होंने गंगाजी को अदृश्य करने का विचार किया। बहुत वर्षों तक गंगाजी भंवान शंकर के जटाजूट में भटकती रही। यह स्थिति देख भागीरथ ने फिर भगवान शंकर की तपस्या की, इस पर भगवान ने फिर गंगाजी को बिन्दू सागर सरोवर में ले जाकर छोड़ा। वहाँ छोड़ते ही गंगाजी भी सात धाराएँ हो गई। तीन धाराएँ पूरब की ओर, तीन पश्चिम की ओर तथा सातवीं महाराज भागीरथ के रथ के पीछे चलने लगी। जिस ओर भागीरथ का रथ जाता उस ओर गंगाजी जाती थी। उसी समय मार्ग में पराक्रमी राजा जूहू यज्ञ कर रहे थे। गंगाजी का प्रवाह उनके मण्डप को बहा ले गया। राजा जूहू गंगाजी के इस गर्व से कुपित हो गये और गंगाजी के समस्त जल को पी गये। यह देख देवता, गन्धर्व, ऋषि, महात्मा जूहू की स्तुति करने लगे। उन्होंने गंगाजी को जूहू की कन्या बना दिया। जूहू बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने अपने कानों के छिद्रों द्वारा गंगाजी को पुन: प्रकट किया। गंगाजी फिर समुद्र तक जा पहुँची।

मानवीय मूल्य, नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य तथा परस्पर विकास

– भीष्मनारायणसिंह चंवरा

मेरे इस लेख का उद्देश्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यों के स्वरूप एवं इनकी आवश्यकता पर प्रकाश डालना है। सभ्यता एवं संस्कृति पर यदि दृष्टि डाली जाये तो हम पायेंगे कि जिस प्रकार का तीव्र वैश्विक स्तर पर राजनैतिक एवं आर्थिक विकास अथवा परिवर्तन हुआ है, वैसा परिवर्तन सांस्कृतिक मूल्यों में देखने को नहीं मिलता। यहाँ मेरा मन्तव्य सांस्कृतिक धरोहर को समाप्त करने का नहीं है। अपितु मेरा प्रयास तथ्यों के आधार पर सामाजिक मूल्यांकन है। अत: सर्वप्रथम हम 'मूल्य' को समझने का प्रयास करते हैं। नीतिशास्त्र में मूल्य व्यक्ति के कार्य के औचित्यपूर्ण एवं अनौचित्यपूर्ण कार्यों का निर्धारण करने वाला तत्त्व है। उदाहरणार्थ सत्य, अहिंसा, त्याग, ईमानदारी तथा समता इत्यादि नैतिक पद हैं। जिन कथनों में इस प्रकार के पदों को सम्मिलित किया जाता है वे कथन नैतिक कथन हैं।

नैतिक मूल्यों के समान सामाजिक मूल्य भी होते हैं। जहाँ नैतिक मूल्य सार्वभौम हैं वहीं सामाजिक मूल्य देश-काल सापेक्ष हैं। अर्थात् भिन्न-भिन्न समाजों में भिन्न-भिन्न सामाजिक मूल्य होते हैं। अपितु यह कहना अधिक तथ्य सम्मत होगा कि सामाजिक मूल्य नैतिक मूल्यों से कहीं अधिक प्रभावशाली होते हैं। व्यक्ति के लिये सामाजिक मूल्यों की अवहेलना कर पाना अत्यन्त कठिन है (भारतीय समाज के संदर्भ में)। ग्रीक दार्शनिक अरस्तु के अनुसार-''मनुष्य सामाजिक प्राणी है तथा जो मनुष्य समाज के अभाव में या सामाजिक मूल्यों से स्वतंत्र जीवन जीता है वह या तो पशु है या ईश्वर।'' भिन्न सांस्कृतिक एवं भौगोलिक स्थिति के कारण मनुष्य समाज भी भिन्न-भिन्न हैं एवं उनके मूल्य परम्पराएँ एवं रिवाज भी अत्यन्त भिन्न हैं। संपूर्ण भारतवर्ष को ही देखें तो यहाँ पग-पग पर समाज धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति एवं परम्पराओं के आधार पर भिन्नता धारण किए हुए हैं।

नैतिक मूल्य जहाँ समता की बात करता है वहीं सामाजिक मूल्यों का आधार उस समाज या जाति विशेष में गतिमान परम्परा है। उदाहरण के लिये यदि उच्च जाति के लेग निम्न जाति के लोगों को बराबरी का स्थान नहीं देते तो समाज विसमता को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। इस प्रकार सामाजिक मूल्य व्यक्ति के देखने के नजरिये (दृष्टिकोण) को इस प्रकार आच्छादित किए हुए हैं कि वह नैतिक मूल्यों के प्रति निरपेक्ष दृष्टि (उचित को ग्रहण करने की स्वीकृति) रख ही नहीं पाता है। अत: वर्तमान में सामाजिक मूल्यों के परीक्षण द्वारा मूल्यों के बोझ को हटाये जाने की आवश्यकता है। अन्तिम शब्द के रूप में सामाजिक मूल्यों को परिष्कृत करने की ओर गौतम बुद्ध के इस प्रसिद्ध कथन ***'आत्म दीपो भव:'*** का अनुशरण सहायक सिद्ध होगा। यदि हम बदलाव के लिये दूसरों की ओर देखते रहेंगे तो बदलाव नहीं आ पाएगा और यदि बदलाव आता भी है तो वह बदलाव मेरे (चुनाव की स्वतंत्रता) द्वारा नहीं किया गया। अर्थात् मुझमें बदलाव स्वबोध से नहीं आ रहा अपितु बाहरी बदलावों के प्रभाव से आता है।

मानव एवं समाज एक दूसरे के पूरक हैं, विकास एवं उन्नति के लिये परस्पर संवाद, सुझाव एवं सहयोग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है। स्वस्थ संवाद के लिये पूर्वाग्रह रहित होना अनिवार्य प्रागापेक्षा है। इस संदर्भ में भारतीय चिंतक जिद्दु कृष्णमूर्ति का कथन है-''विचारों से भरा मस्तिष्क सत्य का अनुसंधान नहीं कर सकता।'' बुद्ध का 'आप दीपो भव:' अथवा अपना दीपक स्वयं बनो का मंतव्य भी यही है। अत: समाज एवं व्यक्ति के विकास में विचारों का खुलापन तथा परस्पर स्वीकार्यता आवश्यक है। सामाजिक समूह यदि इस बिन्दु पर मंथन करें तो संवाद स्थापना कतई असंभव नहीं है। संवाद से सुझाव और सुझाव से सहयोग की उत्पत्ति ही विकास की प्रारम्भिक अवस्था है।

मन

– *युधिष्ठिर*

आपका प्रश्न ''मन में कोई बात बैठ जाती है तो उसे निकालें कैसे?'' बहुत ही आसान है। साधना तो संयम की है। ईश्वर को न मानने वाला कोई भी व्यक्ति धरती पर नहीं है। ईश्वर ने किसी के साथ भेदभाव नहीं किया है। हमें मन लगाना तो आता है पर मन को वहाँ से हटाना नहीं आता। मन को लगाना सबको आता है। भगवान की कृपा से यह प्रक्रिया सभी में है। धरती पर एक ही व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसमें यह प्रक्रिया न हो।

मन जैसे लगता है, वैसे ही वह हटता है। मन लगता है चिंतन से। चिंतन पैदा होता है तस्वीर से, वीडियो से। और सरल शब्दों में कहूँ तो आप समय कहाँ बिताते हो उससे लगता है। जहाँ मन लगाना है उस ओर इतना ध्यान दो ताकि जहाँ अब मन लगा हुआ है, वहाँ से अपने आप ही हट जाए। तनसिंहजी को यह पता था इसलिए उन्होंने वैसा वातावरण दे दिया। उस वातावरण ने जहाँ से मन हटाना है उसकी तरफ संयम को खड़ा कर दिया और जहाँ मन लगाना है उसकी ओर अभ्यास को खड़ा कर दिया।

हमारी एक और गलतफहमी है कि तनसिंहजी में दर्द था। दर्द सामान्य व्यक्ति में होता है, महापुरुष में नहीं होता। जो दर्द उनमें दिखा वह केवल लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने का हथियार था। जब तक मन है तब तक दर्द है। मन नहीं तो दर्द भी नहीं। महापुरुष की स्थिति दर्द के बाद की स्थिति है। लेकिन हमारी तुच्छ बुद्धि उन महापुरुष को पहचान ही नहीं पाई। जिसको पुराना समझा वो कभी पुराना था ही नहीं, पुराना हो ही नहीं सकता। जिसकी जरूरत कभी खत्म नहीं हो सकती। जिसको सब ढूंढ रहे हैं।

सब कहते हैं सकारात्मक सोचो। सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही गलत है, विचार ही गलत है। जैसे नकारात्मक विचार मन में बांधता है, वैसे ही सकारात्मक विचार भी मन में बांधता है। दोनों ही नए संसार की रचना करते हैं। व्यक्ति की गल्ती है कि वह कल्पनाओं में जीता है। कल्पना इसलिए हुई क्योंकि मन ने नए संसार रच डाले। मन ने नया संसार इसलिए रचा क्योंकि वैसे ही संस्कार उस पर गिरे।

आपके मन की उलझन–''किसकी बात मानें और किसकी नहीं? कौन सही बोल रहा है और कौन गलत?'' आपको चाहिए अपनी समस्याओं का समाधान। तो सुन लो! जो उपचार आपको बताए जाते हैं, उसमें केवल वही उपचार सही है जो आपको बताया गया है बिना मन की सहायता के। केवल वही उपचार सही है जिसमें आपकी समस्याओं को मिटाने में मन का कोई उपयोग न होता है। इसके अलावा सब दर-दर की ठोकरें खाने के कारण होते हैं। व्यक्ति के शब्द व्यक्ति के बारे में सब कुछ बता देते हैं। किसी भी व्यक्ति को पहचानने के लिये बस उसे देखा करो। वह अपने आपको छुपा सकता है पर उसके शब्द उसके बारे में सब कुछ बता देंगे या यों भी कह सकते हैं वह अपने बारे में शब्दों से ही बोलता है। वह शब्दों से बोलता है क्योंकि वह मजबूर है। वह बोले बगैर रह नहीं सकता। यह कर्म उससे कौन करवाता है? यह कर्म उससे उसका मन करवाता है। वह शुरू से मन के अधीन था या वह मन के अधीन बना? वह मन के अधीन बना। आपका मन कैसा है, जैसा आपने उसे बनाया है। और जैसा आपने बनाया है वैसे ही कर्म वह आपसे करवा लेगा। बहुत कम ऐसे लोग होते हैं जो उन्हें मन कहे वैसा वे नहीं करते हैं। संयम ही साधना है। मन को साधना पड़ता है। मन नियन्त्रित होता है जब उसे सब ओर से समेटकर एक स्थान पर लगाया जाता है।

''मन क्या जानता है और क्या नहीं?'' मन को लगाना, हटना और मिटना ही आता है। मन लगाना हर

व्यक्ति के स्वभाव में है, सरल है। इसके लिये मेहनत नहीं करनी पड़ती। मन ऐसा चक्रव्यूह है जिसमें घुसना तो सबको आता है पर उसे भेदकर बाहर निकलना हर किसी को नहीं आता है। बाहर निकलने का एक ही तरीका है, जिस तरह से अन्दर घुसे; क्या करने से अन्दर प्रवेश मिला वह याद करें और उसे करना बन्द कर दें। अगर यह मुश्किल लगे तो ज्यादा समय वहाँ बिताएँ जहाँ मन को लगाना है और जहाँ से मन को हटाना है वहाँ बिल्कुल भी ध्यान न दें या वहाँ बिल्कुल भी समय न बिताएं। मन को लगने और हटने के अलावा बस मिटना आता है। और कुछ भी नहीं जानता यह। बस इतनी-सी कहानी है मन की। तो यह हमारे पर इतना हावी क्यों हो जाता है, क्योंकि हमने वैसी व्यवस्था की जिससे वह गड़बड़ा जाए।

अनुशासन शब्द को सबने पकड़ा। तनसिंहजी चाहते थे स्थिरता को पकड़ो। अनुशासन बहुत छोटा शब्द है जो स्थिरता से निकलता है। अनुशासन इच्छाएँ पैदा करेगा और संसार में दौड़ाएगा। अनुशासन के पीछे पड़ना यानी कि अनुशासन को रटना। चाहे कितना ही रट लो वह स्थिर होगा ही नहीं और जिस दिन रटना छोड़ा उस दिन अनुशासन गायब हो जाएगा। अनुशासन दिखे या न दिखे यह जरूरी नहीं स्थिरता दिखनी चाहिए। स्थिरता किसकी, मन की।

मन स्थिर कैसे होता है? मन स्थिर तब होता है जब विचार बन्द हो जाएँ? विचार बन्द कब होते हैं? जब मन के संस्कार मिट जाएँ। मन के संस्कार कब मिटते हैं, जब नए संस्कार स्थान न ले सकें और पुराने सारे संस्कार मिट जाएँ। नए संस्कार पैदा न हों और पुराने संस्कार मिट जाएँ, ऐसा कैसे होगा? केवल एक उपाय। मन की तरफ ध्यान मत दो। मन की तरफ ध्यान न दें, यह कैसे सम्भव है? सम्भव है। थोड़ा समय लग सकता है पर साधुओं ने एक रास्ता खोज निकाला है। साधुओं ने यह खोज निकाला है, जब मन का ध्यान कहीं और लगा दिया जाए तो मन से सारे संस्कार मिट जाते हैं। साधुओं ने एक शब्द को पकड़ा। साथ में सहायता ली श्वास की पर शर्त है शब्द छोटा होना चाहिए। पर शब्द छोटा क्यों होना चाहिए? क्योंकि बड़ा शब्द श्वास में नहीं उतरता। पर श्वास की मदद क्यों लेनी पड़ी? क्योंकि श्वास ही मन को रोक सकती है। पर श्वास ही मन को क्यों रोक सकती है? श्वास मन को इसलिए रोक सकती है क्योंकि जैसे मन का दौड़ना निरन्तर है वैसे ही श्वास का आना और जाना निरंतर है। लेकिन मन की तरफ ध्यान न जाए यह अभी तक समझ में नहीं आया। क्योंकि आप ने मन को ऐसा अभ्यास करवाया कि वह अपनी ओर ध्यान न देकर शब्द की ओर ध्यान दे। कई वर्षों के अभ्यास से मन की वैसी ही आदत पड़ गई। मन को जैसी आदत डालना चाहो वैसी आदत डाल सकते हो। क्योंकि मन एक धोखा है, हकीकत नहीं। आपने इसे सच समझा क्योंकि इसने सच कभी आपको देखने ही नहीं दिया। मन ही समय बर्बाद करता है, नहीं तो परमात्मा तो आप ही हैं।

प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मन: प्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मन: प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दोहराता है। यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है। विवश है। वह कर्त्ता नहीं है, वह केवल साधन है।

– भगवती चरण वर्मा

अपनी बात

यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि साधना की सीढियाँ हैं। इनमें यम एक सीढी है, जिसके पाँच अंग हैं। उन पांच अंगों में से एक अंग है अपरिग्रह। अपरिग्रह अर्थ हम शब्दकोष में देखें तो वह है-वस्तुओं का संग्रह न करना। यदि इसको हम यह मान लें कि कुछ भी न रखना, सब कुछ छोड़ देना तो यह संसार, यह जीवन कैसे चलेगा। यदि सभी वस्तुओं को छोड़ दिया जाए तो कर्म भी छूट जाता है, जो संभव नहीं है। साधना में अपरिग्रही चित्त को लिया गया है। ऐसा चित्त जो वस्तुओं का उपयोग तो करता है, लेकिन वस्तुओं को अपनी मालकियत नहीं देता। कोई वस्तु उसकी मालिक नहीं बन पाती। वस्तुओं के साथ कोई राग, कोई आसक्ति का सम्बन्ध निर्मित नहीं करता।

घर में एक नौकर है जो घर में वस्तुओं का उपयोग करता है। उनको संभाल कर रखता है, संभाल कर उठाता है। उनका उपयोग भी करता है, काम में भी लेता है। लेकिन यदि घर की कोई बहुमूल्य वस्तु खो जाय, तो उसे कोई पीड़ा नहीं होती। यद्यपि घर वालों से भी ज्यादा उस वस्तु के सम्पर्क में नौकर को आने का मौका मिलता है। लेकिन खो जाए, टूट जाए, चोरी चली जाए तो नौकर को जरा भी चिंता पैदा नहीं होती। वह घर जाकर रात में आराम से गहरी नींद सोता है। क्यों? क्योंकि वह वस्तु का उपयोग तो कर रहा है, लेकिन उसका वस्तु से किसी तरह का रागात्मक सम्बन्ध नहीं था। मान लें कि एक घड़ी, जिसको वह रोज साफ करता था, टूट गई हो तो नौकर को कुछ भी भीतर टूटन महसूस नहीं होगी। क्योंकि घड़ी ने भीतर कोई स्थान नहीं बनाया था।

लेकिन घड़ी के टूटने के बाद यदि नौकर से घर का मालिक कहे कि यह तो बहुत बुरा हुआ, आज तो मैं सोच रहा था कि संध्या को जाते समय यह घड़ी तुम्हें भेंट कर दूंगा। तो उस दिन उसकी नींद हराम हो जाएगी। अब उसका घड़ी से रागात्मक सम्बन्ध बन गया। घड़ी नहीं है फिर भी सम्बन्ध बन गया। इतने दिन घड़ी थी, घड़ी का उपयोग किया था पर उसके साथ कोई रागात्मक सम्बन्ध नहीं था। वह मिल सकती थी, मेरी हो सकती थी, इस भाव ने ही भीतर एक जगह बना ली और वह दुखी हो गया। अब तक घड़ी दीवार पर लटकी थी, अब हृदय के किसी कोने में लटक गई है।

जब वस्तुएँ बाहर होती हैं और भीतर नहीं, जब उनका उपयोग तो बराबर लिया जा रहा हो, लेकिन उनके प्रति आसक्ति निर्मित नहीं होती तब अपरिग्रह फलित होता है। जीवन को जीना है उसकी समग्रता में, लेकिन ऐसे, जैसे कि जीवन हमें छू न पाए। गुजरना है वस्तुओं के बीच से, व्यक्तियों के बीच से, लेकिन अस्पर्शित रहकर।

जिन वस्तुओं से मोह निर्मित हो जाता है, उनको छोड़कर चले जाएँ, थोड़े दिनों में मन उन्हें भूल जाता है। स्मृति कमजोर है, कितने दिन याद रखेगा, भूल जाएगा। पुराने राग विस्तृत हो जाएंगे पर नए राग बना लेंगे। प्रिय व्यक्ति मर जाता है, तो दुखी होते हैं पर धीरे-धीरे भूल जाते हैं। नए सम्बन्ध निर्मित हो जाते हैं। यात्रा फिर शुरू हो जाती है, कुछ रुकता नहीं। वस्तुओं को छोड़कर भाग जाता है, वह उन्हें भूल जाएगा, लेकिन भाग जाना उससे मुक्त हो जाना नहीं है। भागता तो वही है जो जानता है कि मैं साथ रहकर मुक्त न हो सकूंगा। अन्यथा भागने का क्या प्रयोजन है। अपने को कमजोर समझता है, वह भागता है।

हीरे-जवाहरात का ढेर लगा हो और कोई अपनी आँख बन्द करके यह कहे कि मैं जवाहरात से अनासक्त हूँ, तो यह धोखा ही है। यदि अनासक्त हूँ तो फिर कितने ही ढेर लगे हों, वे कैसे आकर्षित कर सकते हैं? अपरिग्रह का अर्थ है, वस्तुएँ जहाँ हैं, वहीं रहने दो; तुम जहाँ हो, वहीं रहो; दोनों के बीच सेतु निर्मित मत होने दो। न तुम वस्तुओं के हो जाओ, न वस्तुओं को समझो कि वे तुम्हारी हैं।

संघ में जो न्यूनतम आवश्यकताओं में जीवन व्यापन करने का भाव निर्मित किया जाता है वह अपरिग्रही चित्त निर्माण का ही मार्ग है। जब आवश्यकता पूरी हो रही है तो न तो और अधिक संग्रह का कोई अर्थ है, और न जो प्रभु ने दिया है, उस पर असंतोष प्रकट करने की आवश्यकता है। प्रभु ने दिया है मेरे उपयोग के लिये, पर यह मेरा तो नहीं है। प्रभु ने दिया है तो प्रभु का ही है। जब मेरा नहीं है तो आसक्ति क्यों?

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि
01.	प्रा.प्र.शि.	7.10.2018 से 10.10.2018	चौबारा–दिल्ली–जयपुर नेशनल हाईवे 8 पर शाहजहाँपुर से 1 कि.मी. दूर।
02.	प्रा.प्र.शि.	7.10.2018 से 10.10.2018	कालाथल–बालोतरा, गिड़ा, पाटोदी से बस हैं।
03.	प्रा.प्र.शि.	7.10.2018 से 10.10.2018	कड़वा (ओसियाँ)
04.	प्रा.प्र.शि.	11.10.2018 से 14.10.2018	बंगलौर (कर्नाटक) 11 अक्टूबर की शाम से। सम्पर्क– श्री बालाजी सिंह–7892463650 श्री ईश्वरसिंह–7338330715
05.	मा.प्र.शि.	14.10.2018 से 20.10.2018	सुजानसिंह का फार्म हाउस, जूना। बाड़मेर से जूना पतरासर रोड़।
06.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	उदट–बीकानेर, कोलायत, नोखड़ा से बसें। सम्पर्क सूत्र– श्री भँवरसिंह उदट–9783134728
07.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	किशनगढ़–राजपूत सभा भवन, फतेहलालनगर, मझेला रोड़, किशनगढ़ सम्पर्क– श्री सुमेरसिंह–98291985566, श्री रावतसिंह–7737728451 श्री विजयराजसिंह–9602246116
08.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	करड़ेश्वर महादेव करड़ा–भीनमाल, सांचोर से बस।
09.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	शंखेश्वर महादेव डोडियाली–हरजी व उम्मेदपुर से बस व टैक्सी।
10.	प्रा.प्र.शि.	14.10.2018 से 17.10.2018	लोहागर मंदिर, सुमेर। देसूरी व जोजावर से साधन। सम्पर्क सूत्र – श्री योगेन्द्रसिंह बासनी–8094010093
11.	मा.प्र.शि.	15.10.2018 से 21.10.2018	अमृतनगर, बालेसर सतां (शेरगढ) श्रीलाल उ.मा.वि. अमृतनगर।
12.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	17.10.2018 से 19.10.2018	रामदेवरा–पोकरण, फलौदी, जैसलमेर से रेल व बस सुविधा।
13.	प्रा.प्र.शि.	19.10.2018 से 22.10.2018	खारा–बीकानेर से लूणकरणसर मार्ग पर। सम्पर्क सूत्र– श्री विजयसिंह खारा–9829241915
14.	मा.प्र.शि.	25.10.2018 से 31.10.2018	कानोड़ (सिवाना) बायतु, गिडा, बालोतरा से बस है। 'शक्तिमान', कोजराजसिंह की ढाणी।

15.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	25.10.2018 से 28.10.2018	बी.जे.एस. जोधपुर।
16.	मा.प्र.शि.	26.10.2018 से 1.11.2018	बाप (फलौदी), जैसलमेर, पोकरण, फलोदी, बीकानेर से हर समय बस। सम्पर्क सूत्र- श्री मूलसिंह मोडरड़ी-9672840955 श्री गणपतसिंह अवाय-9414149797
17.	मा.प्र.शि.	26.10.2018 से 1.11.2018	राणियावास (नायला) व्यवस्थापक-श्री राजेन्द्रसिंह चौहान-9414228383
18.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	खेतलावास-सायला-जीवाणा से टैक्सी।
19.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	हनुमान जी का मंदिर भवानीगढ-रेवदर व जसवंतपुरा से बस व टैक्सी।
20.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	सांडेराव-निम्बेश्वर महादेव मंदिर। फालना, सांडेराव से बस। सम्पर्क सूत्र-श्री पर्वतसिंह खिंदारागाँव-9887114322
21.	प्रा.प्र.शि.	26.10.2018 से 29.10.2018	बोघेरा (चूरू)। सरदारशहर-साहवा निजी बस रूट पर बोघेरा स्थित है। सरदारशहर निजी बस स्टैण्ड से प्रात: 7.30, 9.00, 11.45 तथा 1.00 बजे बस मिलती है। सम्पर्क-सुबेदार श्री शार्दुलसिंह-6350254116
22.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	रायथलिया (मकराना)-कुचामन-तोषीणा मार्ग पर स्थित है। कुचामन से पर्याप्त साधन हैं। सम्पर्क सूत्र- श्री जितेन्द्रसिंह रायथलिया-9610521884
23.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	करमा-चांदन से करमा।
24.	प्रा.प्र.शि.	28.10.2018 से 31.10.2018	किलचू-चौपड़ा कटला से बसें। सम्पर्क सूत्र-श्री पुष्पेन्द्रसिंह किलचू-9413388044
25.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	29.10.2018 से 1.11.2018	जगदम्बा सी.सै. स्कूल, नांगल-जैसाबोहरा (जयपुर)
26.	प्रा.प्र.शि.	29.10.2018 से 1.11.2018	कांकाणी। जोधपुर-पाली मार्ग पर।
27.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	29.10.2018 से 31.10.2018	तखतगढ। अभय नोबल स्कूल। सांडेराव, सुमेरपुर से जालोर मार्ग पर। सम्पर्क सूत्र-श्री शम्भूसिंह बालोत-9413078545
28.	मा.प्र.शि.	29.10.2018 से 4.11.2018	धनोप माता। शाहपुरा-केकड़ी मार्ग पर फूलियाथाना से 5 कि.मी. पर मंदिर।
29.	प्रा.प्र.शि.	1.11.2018 से 4.11.2018	भगतपुरा (सीकर)
30.	प्रा.प्र.शि.	1.11.2018 से 3.11.2018	नगेवैर कल्याण शक्तिधाम, हीरापुर, गुजरात नर्सरी के सामने, अहमदाबाद

31.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	2.11.2018 से 4.11.2018	वालोदर-मेहसाणा के नजदीक स्थित।
32.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2018 से 4.11.2018	समौगाँव, तह. सिद्धपुर (मेहसाणा)
33.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2018 से 5.11.2018	भांवता (कुचामन)-कुचामन से पर्याप्त साधन। सम्पर्क- श्री विजेन्द्रसिंह भांवता सरपंच-9828223145 श्री भंवरसिंह भांवता-9783233585
34.	प्रा.प्र.शि.	2.11.2018 से 5.11.2018	चारणवाला-बज्जू, बाप, नाचना से बसें उपलब्ध।
35.	प्रा.प्र.शि.	3.11.2018 से 6.11.2018	घंटियाल बड़ी (बीदासर) बीदासर एवं सुजानगढ से बसें उपलब्ध।
36.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	3.11.2018 से 6.11.2018	सोनू-जैसलमेर, रामगढ से सोनू की बसें। सम्पर्क- श्री पदमसिंह रामगढ-9001071485
37.	मा.प्र.शि.	10.11.2018 से 16.11.2018	वालूकड़ा, हाई स्कूल। भावनगर से 12 कि.मी. दूर वालूकड़ा।
38.	मा.प्र.शि. (बालिका)	12.11.2018 से 18.11.2018	नारोली-स्कूल में। थराद से बस सेवा है।
39.	प्रा.प्र.शि.	16.11.2018 से 18.11.2018	कनीज-तह. अहमदाबाद। जसोदानगर, नडियाद रोड़ (खेड़ा)
40.	प्रा.प्र.शि.	18.11.2018 से 21.11.2018	डिगाड़ी (जोधपुर)-तिंवरी से बसें।
41.	मा.प्र.शि.	18.11.2018 से 23.11.2018	घाटमपुर (उ.प्र.) रेल द्वारा कानपुर, वहाँ से बस।
42.	प्रा.प्र.शि.	20.11.2018 से 23.11.2018	चौपासनी (जोधपुर)
43.	प्रा.प्र.शि.	22.11.2018 से 25.11.2018	बुड़किया। देचू से टैक्सी।
44.	प्रा.प्र.शि.	22.11.2018 से 25.11.2018	नैणिया (परबतसर)। परबतसर से पर्याप्त साधन। सम्पर्क- श्री बजरंगसिंह नैणियाँ
45.	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	27.11.2018 से 30.11.2018	बीकानेर-सुभाष पेट्रोल पम्प के पीछे, जयपुर रोड़ पर स्थित नारायण-निकेतन

✻ गणवेश व आवश्यक साहित्य लेकर आवें।

राजेन्द्रसिंह बोबासर

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

हुकुम सिंह कुम्पावत (आकडावास, पाली)

शिव ज्वैलर्स

विश्वसनीयता में एक मात्र नाम

22/22 कैरेट हॉलमार्क आभूषण,
न्यूनतम बनवाई दर पर

शुद्ध राजपूती आभूषण (बाजूबन्द, पूछी, बंगडी, नथ आदि)
तैयार उपलब्ध एवं ऑर्डर से भी तैयार किये जाते है।

विशेषज्ञ :- सोने व चाँदी की पायजेब, अंगूठी, डायमण्ड, कुन्दन के आभूषण, बैंकॉक आईटम्स आदि

जी-1, सफायर कॉम्पलेक्स, जैन मेडिकल के सामने, खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर

मो. 7073186603, 8890942548 ब्रांच :- बैंगलोर व मुम्बई

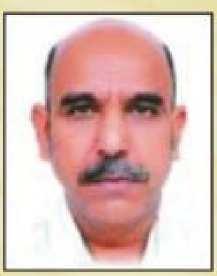

Sharwansingh Jaitawat
9326805192
020-65107720
65107740
27660466

Shree Mahavir Plywood & Hardware

Plywood	Moulding	Carving
Frame	Lipping	Laminate
Flush Door	All Types of woods	All Brass Fitting

Sharwansingh S/o. Dungarsingh Jaitawat
V.P.O. Dhunda Lambodi, Tal.-Sojat, Distt.-Pali

Shop Add. :- Chikhali Road, M.I.D.C., 'G' Block, PL. No. PAP-24
Kasturi Market, Sambhaji Nagar, Chinchwad, Pune-19

प्रेम पौशाक

समस्त राजपूती पौशाकों के होलसेल विक्रेता

भँवर सिंह पीपासर
9828130003

रिडमल सिंह महणसर
9829027627

शॉप नं. 93, जोधपुर स्वीट्स के सामने, खातीपुरा रोड़, झोटवाड़ा, जयपुर

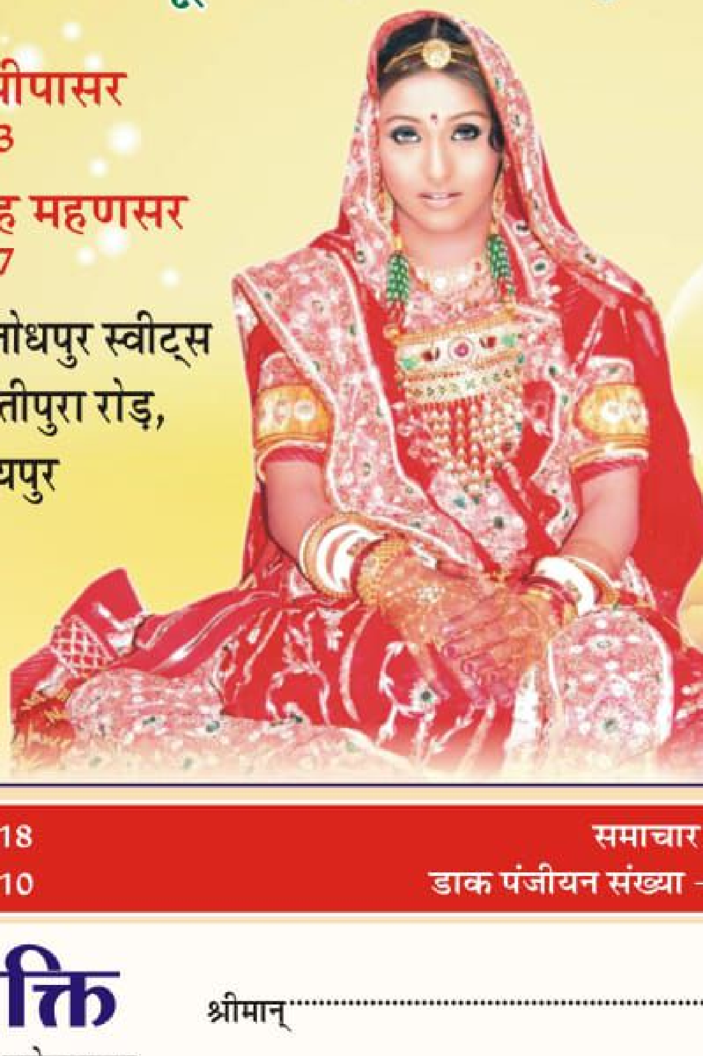

दातारसिंह दुगोली
7339926252

गली नं. 16 कॉर्नर, बी.जे.एस. कॉलोनी, पावटा बी रोड़, जोधपुर

अक्टूबर, सन् 2018
वर्ष : 55, अंक : 10

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह